संस्थापित १८६७ ई.

# आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १३० ● : अंक ३२ ● ०७ अगस्त, २०२५ (गुरुवार) श्रवण शुक्लपक्ष त्रयोदशी सम्वत् २०८२ ● दयानन्दाब्द २०१ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२६

## राष्ट्र निर्माण में योग की उपयोगिता

डॉ. सुशील वर्मा

वेदों की असमानताओं में समानता एवं अनेकताओं में एकता की खोज विश्व संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। वेदों के अनुसार इस पृथ्वी पर भिन्न भिन्न रूप रंग भेदों और नाना धर्म वाले मानव सदा से ही रहे हैं और रहते रहेंगे।

"जनं विभ्रती बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्। सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहां ध्रुवे धनुरनपस्फुरन्ती।। अथर्व-१२.१.४५

अलग अलग धर्म होते हुए भी परमात्मा एक है।

यह प्राय स्वीकार्य है इसीलिए ऋग्वेद (१.१६४.४६) कहता है।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

इसी सन्दर्भ में भारत के ऋषि मुनियों ने सारे विश्व को एक परिवार अथवा कुटुम्ब माना-"वसुधैव कुटुम्बकम्" यही अनेकता में एकता राष्ट्रीय जीवन का मूलमन्त्र है। यही एकता स्थापित करने वाली जीवन व्यवस्था अथवा संस्कृति ही राष्ट्रीयता है। मातृभूमि मातृभाषा एवं मातृसंस्कृति के एकाकार का नाम ही तो राष्ट्र है। राष्ट्र भूमि का एक भाग नहीं अपितु वहां एकता में रहने वाले ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं। राष्ट्र कोई मत सम्प्रदाय, वर्ग जाति व बोली नहीं है। यदि जन संस्कृति की एकता भूमि की एकता और अखण्डता से मेल नहीं खाती तो सब निस्फल है। मातृभूति की एकता ही वह बेदी है। जहाँ राष्ट्रीय मत की आहुतियाँ, राष्ट्र के अधिदेवता तक समर्पण की जाती है। इदं राष्ट्रीय स्वाहा इदं राष्ट्राय इदंनमं। माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या (अथर्व १२.१.१२) माता पुत्र के प्यार की अनुभूति राष्ट्र निर्माण की सबसे सुदृढ़ नीव है। माता पुत्र का प्यार व्यक्ति को राष्ट्र भक्त बनाता है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए यह आवश्यक है कि जो जन जिसके अन्न जल औषधि फल-फूल से पोषित होते हैं उन्हें राष्ट्र के प्रति विश्वसनीय होना चाहिए। राष्ट्र की रक्षा के लिए बलिदान देने के लिए तत्पर रहना ही परम करर्त्तव्य है-

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम
(अथर्व-१२.१.६२)

अमर तत्वों का ज्ञान श्रम तप दक्षता एवं यज्ञ दान आदि ही हमें इन वेद उपदेशों को क्रियान्वत करने का उचित साधन प्रदान करता है।

इन्हीं सत्यताओं से निर्मित भारतीय राष्ट्र एवं संस्कृति अमर है। सत्यं वृहद् ऋतुमग्रं दीक्षा तपो ब्रक्ष यज्ञ पृथिवी धारयन्ति। (अथर्व.१२.१.१)

वह सब कुछ प्राप्त हो सकता है योग से। योग दर्शन वेदों का एक अंग है। पतंजली योग दर्शन के अनुसार चित्त वृत्तियों का विरोध ही योग है। योगश्चित्तवृति निरोधः योग दर्शन १.२ योग दर्शन के अनुसार योग के आठ अंग हैं।

यम नियमासनप्राणायाम
प्रत्याहारधारणा ध्यान
समाधयोऽस्यवंगानि।। योग.२/२६
अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य
अपरिग्रह पांच नियम।।
शौच सन्तोष तप स्वाध्याय एवं
प्राणिधान (ईश्वर शणागति।)

इनका पालन करते हुए योग में दक्ष होकर व्यक्ति योग शक्तियों द्वारा राष्ट्र रक्षा में महत्तवपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसके अतिरिक्त साधना ध्यान धारणा एवं समाधि द्वारा दिव्य ज्ञान व दिव्य शक्तियां संचित करके राष्ट्र को अपूर्व बल प्रदान कर सकता है। कमजोर व्यक्ति न तो परमात्मा को पा सकता है और न ही सांसारिक सुखों को। उपनिषद कहता है "नाऽयमात्मा बलहीनेन लभ्यों" योग साधना से शक्ति एवं ज्ञान की अभिवृद्धि होती है।

प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त ज्ञान विज्ञान का अध्ययन भी आवश्यक है। आज विश्व के अन्य देश वैज्ञानिक अनुसन्धानों के कारण ही वैभव व ऐश्वर्य में तीव्र गति से प्रगति कर रहे हैं। हमारे ऋषि मुनि भी उच्चकोटि के वैज्ञानिक थे। आज भी विज्ञान उस स्तर तक नहीं पहुंच पाया जो हमारे पूर्वज निर्धारित कर गए। हमारा दुर्भाग्य रहा कि अक्रान्ताओं चाहे वे मुगल थे अथवा अंग्रेज उन्होंने हमारी सारी संस्कृति सभ्यता विज्ञान की उपलब्धियों को समाप्त करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। हमें हीनता एवं निष्कृष्टता के भ्रम जाल में फंसा कर अपनी सभ्यता को हम पर छल बल से थोपा। परिणाम स्वरूप हम अपनी धरोहर सभ्यता संस्कृति से दूर होते चले गए और पहले मुसलमानों के फिर अंग्रेजों के गुलाम होते होते लोगों को अपने से श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली मानते रहे और उसी रंग में अपने को ढालते गए। आज परिणाम स्पष्ट है न भाषा अपनी रही, न ही वेश भूषा न ही शिक्षा और न ही उच्च चरित्र एवं आचरण। आज हम प्रयास तो कर रहे हैं। उस संस्कृति को अपनाने का। ज्ञान विज्ञान के बल पर ही पाश्चात्य देशों ने भारी प्रगति की। उनका वैभव व ऐश्वर्य तीव्र गति से बढ़ा है। वेदों के अनुसार जिस राष्ट्र के नागरिक ज्ञान विज्ञान के साथ सैन्य बलों का विकास करते हैं

वहां सुखों एवं पुण्यताओं की धाराएँ बहती हैं।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्य प्रक्षेसं यत्र देवा
सहाग्निना। यजु० २०.२५

योग विद्या उस बल व ज्ञान को प्राप्त करने की विद्या है। इसमें ब्रह्म और क्षत्र शक्तियों के समन्वय की अद्भुत शक्ति है। इससे मन की मलिनताएँ दूर होकर पवित्रताओं का उदय होता है। योगाभ्यास से आत्म बल का अभ्युदय होता है। यदि व्यक्ति नियमित रूप से कुछ यौगिक क्रियाओं का अभ्यास करता है तो वह निरोग बलिष्ठ, दीर्घजीवी एवं प्रसन्नचित रहेगा। यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि अधिकतर लोग योगाभ्यास की तुलना व्यायाम से करते हैं। योगाभ्यास से हम अपनी श्वासों को नियंत्रित करते हुए दीर्घाय को प्राप्त होते हैं। व्यायाम में श्वास पर नियन्त्रण नहीं कर पाते। योगाभ्यास में न हमें किसी प्रकार की थकान महसूस होती है और न ही विश्राम की इच्छा। वहीं व्यायाम से थकावट भी होती है। और विश्राम की इच्छा रहती है। योग प्रत्येक व्यक्ति बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक कर सकता है। योग तो आसनों, प्राणायाम, ध्यान व समाधि द्वारा लघु व बृहद् मस्तिष्क को पूर्णरूपेण स्वस्थ करते हैं जबकि व्यायाम में मस्तिष्क के लिए कोई स्थान नहीं है। योग से श्वासों को सामान्य करते हुए मन व चित्त को विचारों से शून्य कर मन को एकाग्र करते हुए ध्यान की ओर अग्रसर होता है।

अतः योग भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों प्रकार के विकास में सहायक हैं। योग विद्या तो भारतीय ऋषियों द्वारा प्रदत्त एक महा विज्ञान है जो मानव मात्र के लिए वरदान है, महत्वपूर्ण, उपयोगी सुखदायी एवं मोक्षदायी है।

वेद का कथन है कि तीन देवियों अथवा शक्तियों के योग से राष्ट्र का निर्माण होता है।

तिस्रो देवीर्वहिरदें सदन्तिवद्रा
सरस्वती-भारती।
मही गृणाना।। यजु. २७.१६

तीन देवियाँ क्रमशः इडा-पृथिवी स्थानीय सरस्वती अन्तरिक्ष स्थानीय और भारती-द्युलोक स्थानीय देवता मानी जाती है। ईडा संस्कृति है जिसके अन्तर्गत पाँच देवता हैं।

मातृदेव पितृदेव आचार्यदेव, अतिथि देव एवं पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी देवता है।

सरस्वती अर्थात् वेद शिक्षा वाणी कला प्रज्ञा बुद्धि।

इसी प्रकार भारती संगठन मित्रता, देवपूजन यज्ञ आदि के माध्यम से ये तीनों हमारी शारीरिक उन्नति आत्मिक उन्नति एवं सामाजिक उन्नति के लिए है। इस तरह हम उनके महत्व को समझते एवं अपनाते हुए राष्ट्र की उन्नति में सहभागी बनते हैं। यही हमारा प्रयास होना चाहिए, योग को को जीवन में अपनाना ही हमारा ध्येय बने।

मो. ७००६८२२७२०

## उपदेशक के रूप में महर्षि दयानन्द

-भावेश मेरजा

महर्षि दयानन्द को उपदेशक के रूप में एक अलग ही श्रेणी में रखा जा सकता है। उनकी कोई बराबरी नहीं है। वे अद्वितीय हैं।

भारत के इतिहास में यह पहली बार हुआ जब दयानन्द ने मूर्तिपूजा के विरुद्ध प्रबल स्वर में आवाज उठाई, जबकि मूर्तिपूजा हिन्दुओं के जीवन, रक्त और हड्डियों तक में समाई हुई मानी जाती थी। लोग मानते थे कि मूर्तिपूजा तो हिन्दू धर्म का एक अभिन्न अंग है। कोई भी इसके विरुद्ध बोलने का साहस नहीं करता था। लेकिन दयानन्द ने इसकी निरर्थकता को स्पष्ट रूप से समझा, क्योंकि उन्हें वेदों में इसका कोई उल्लेख नहीं मिला। वेदों में बीस हजार से अधिक मंत्र हैं, पर एक भी मंत्र मूर्तिपूजा का समर्थन नहीं करता। इसके विपरीत वेद कहते हैं उस निराकार परमात्मा की कोई मूर्ति, प्रतिमा या रूप नहीं हो सकता।

(न तस्य प्रतिमा अस्ति...
यजुर्वेद ३२.३)

इसीलिए दयानन्द ने मूर्तिपूजा पर प्रबल प्रहार किया। उन्होंने सभी पौराणिक पंडितों को खुलेआम चुनौती दी कि यदि मूर्तिपूजा वेदों में है तो दिखाओ, नहीं तो इसे पूरी तरह छोड़ दो। यह आवाज गरजते हुए बम की तरह गूंजी। कश्मीर से कन्याकुमारी तक सभी पंडित चौंक उठे। वे शास्त्रार्थ करने आए, लेकिन कोई भी वेदों से मूर्तिपूजा को सिद्ध नहीं कर सका।

जब दयानन्द ने बड़े-बड़े पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया, तो बुद्धिजीवी वर्ग पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। लोगों को मूर्तिपूजा की निरर्थकता का एहसास हुआ। कोई भी पत्थर की मूर्ति, चाहे वह कितनी भी सुंदर क्यों न हो, पत्थर ही रहती है। जैसे ताजमहल लोगों की प्रशंसा को सुन नहीं सकता, वैसे ही मूर्तियाँ चेतन नहीं होतीं।

दयानन्द ने भारत के कोने-कोने में घूम-घूम कर हिन्दुओं को मूर्तिपूजा से दूर रहने का उपदेश दिया। उनकी लगातार चलने वाली यह प्रचार यात्रा हिन्दुओं के मन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ले आई। यह विचार और भावना के संघर्ष का युग बन गया और विचारों ने भावनाओं को पराजित किया। बहुत से बुद्धिमान हिन्दुओं ने मूर्तिपूजा में अपनी आस्था खो दी और गंगा-यमुना में मूर्तियाँ प्रवाहित करने लगे।

इस प्रकार दयानन्द मूर्तिपूजा के विरुद्ध अपने अभियान में काफी हद तक सफल हुए।

उन्होंने हिन्दू धर्म को मूर्तिपूजा की गंदी बेड़ियों से मुक्त करके अतुलनीय सेवा की। मूर्तिपूजा हिन्दू धर्म में बाद में जोड़ी गई चीज है। श्रीकृष्ण के समय तक हिन्दू धर्म में इसका कोई स्थान नहीं था। यह महावीर स्वामी के समय से हिन्दू धर्म में प्रवेश कर गई। इस तथ्य का यह पक्का प्रमाण है कि महावीर के पूर्व काल में मूर्तिपूजा का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसलिए यह बाद की उपज है, जिसे कुछ स्वार्थी पंडितों ने अपनी आजीविका के लिए चतुराई से जोड़ दिया।

इस विषय के अंत में बंगाल के एक महान और निष्पक्ष लेखक पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की प्रेरणादायक

शेष पृष्ठ-५ पर देखें.....

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

# सम्पादकीय.....

## सनातन का सत्य

सनातन धर्म में सनातन क्या है ?

हम आज बहुत गर्व से राम-कथा में अथवा भागवत-कथा में, कथा के अंत में कहते हैं।

बोलिए --- सत्य सनातन धर्म की जय ।

तनिक विचारें ? सनातन का क्या अर्थ है ?

सनातन अर्थात जो सदा से है, जो सदा रहेगा, जिसका अंत नहीं है और जिसका कोई आरंभ नहीं है वही सनातन है। और सत्य में केवल हमारा धर्म ही सनातन है, यीशु से पहले ईसाई मत नहीं था, मुहम्मद से पहले इस्लाम मत नहीं था। केवल सनातन धर्म ही सदा से है, सृष्टि के आरंभ से ।

किन्तु ऐसा क्या है जो सदा से है ?

श्री कृष्ण की भागवत कथा श्री कृष्ण के जन्म से पहले नहीं थी अर्थात कृष्ण भक्ति सनातन नहीं है ।

श्री राम की रामायण तथा रामचरितमानस भी श्री राम जन्म से पहले नहीं थी अर्थात श्री राम भक्ति भी सनातन नहीं है ।

श्री लक्ष्मी भी, (यदि प्रचलित सत्य-असत्य कथाओ के अनुसार भी सोचें तो), तो समुद्र मंथन से पहले नहीं थी अर्थात लक्ष्मी पूजन भी सनातन नहीं है ।

गणेश जन्म से पूर्व गणेश का कोई अस्तित्व नहीं था, तो गणपति पूजन भी सनातन नहीं है ।

शिव पुराण के अनुसार शिव ने विष्णु व ब्रह्मा को बनाया तो विष्णु भक्ति व ब्रह्मा भक्ति सनातन नहीं हैं।

विष्णु पुराण के अनुसार विष्णु ने शिव और ब्रह्मा को बनाया तो शिव भक्ति और ब्रह्मा भक्ति सनातन नहीं।

ब्रह्म पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने विष्णु और शिव को बनाया तो विष्णु भक्ति और शिव भक्ति सनातन नहीं ।

देवी पुराण के अनुसार देवी ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव को बनाया तो यहाँ से तीनो की भक्ति सनातन नहीं रही ।

यहाँ तनिक विचारें ये सभी ग्रन्थ एक दूसरे से बिलकुल उल्टी बात कर रहे हैं, तो इनमें से अधिक से अधिक एक ही सत्य हो सकता है बाकी झूठ, लेकिन फिर भी सब पुराणिक इन चारो ग्रंथो को सही मानते हैं ,

अहो! दुर्भाग्य !!

फिर ऐसा सनातन क्या है ? जिसका हम जयघोष करते हैं?

वो सत्य सनातन है परमात्मा की वाणी ।

आप किसी मुस्लमान से पूछिए, परमात्मा ने ज्ञान कहाँ दिया है? वो कहेगा कुरान में।

आप किसी ईसाई से पूछिए परमात्मा ने ज्ञान कहाँ दिया है ? वो कहेगा बाईबल में।

लेकिन आप पुराणिक हिन्दू से पूछिए परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान कहाँ दिया है ? पुराणिक निरुतर हो जाएगा ।

आज दिग्भ्रमित पुराणिक हिंदू ये भी नहीं बता सकता कि परमात्मा ने ज्ञान कहाँ दिया है ?

आधे से अधिक तो केवल हनुमान चालीसा में ही दम तोड़ देते हैं। जो कुछ धार्मिक होते हैं वो गीता का नाम ले देंगे, किन्तु भूल जाते हैं कि गीता तो योगीश्वर श्री कृष्ण देकर गए हैं परमात्मा का ज्ञान तो उस से पहले भी होगा या नहीं ? अर्थात वो ज्ञान जो श्री कृष्ण संदीपनी मुनि के आश्रम में पढ़े थे।

जो कुछ अधिक ज्ञानी होंगे वो उपनिषद कह देंगे, परंतु उपनिषद तो ऋषियों की वाणी है न कि परमात्मा की ।

तो परमात्मा का ज्ञान कहाँ है ?

वेद! जो स्वयं परमात्मा की वाणी है, उसका अधिकांश पुराणिक हिंदुओं को तो केवल नाम ही पता है ।केवल आर्य ही वेदो को अपना धर्म शास्त्र कहते हैं और उसका प्रचार करते हैं

वेद, परमात्मा ने मनुष्यों को सृष्टि के प्रारम्भ में दिए। जैसे कहा जाता है कि ''गुरु बिना ज्ञान नहीं'', तो संसार का आदि गुरु कौन था? वो परमात्मा ही था। उस परमपिता परमात्मा ने ही सब मनुष्यों के कल्याण के लिए वेदों का प्रकाश, सृष्टि के आरम्भ में किया।

जैसे जब हम नया मोबाइल लाते हैं तो साथ में एक गाइड मिलती है , कि इसे कैसे चलाना है , इसे यहाँ पर रखें , इस प्रकार से वरतें , अमुक स्थान पर न ले जायें, अमुक चीज के साथ न रखें, आदि ...।

उसी प्रकार जब उस परमपिता ने हमें ये मानव तन दिए, तथा ये संपूर्ण सृष्टि हमे रच कर दी, तब क्या उसने हमे यूं ही बिना किसी ज्ञान व बिना किसी निर्देशों के भटकने को छोड़ दिया ?

जी नहीं, उसने हमे साथ में एक गाइड दी, कि इस सृष्टि को कैसे वर्तें, क्या करें, ये तन से क्या करें, इसे कहाँ लेकर जायें, मन से क्या विचारें, नेत्रों से क्या देखें, कानो से क्या सुनें, हाथो से क्या करें आदि। उसी का नाम वेद है। वेद का अर्थ है ज्ञान ।

परमात्मा के उस ज्ञान को आज हमने लगभग भुला दिया है।

वेदों में क्या है ?

वेदों में कोई कथा कहानी नहीं है। न तो कृष्ण की न राम की, वेद में तिनके से लेकर ब्रह्मंड और परमेश्वर पर्यंत वह सम्पूर्ण मूल ज्ञान विद्यमान है, जो मनुष्यों को जीवन में आवश्यक है ।

मैं कौन हूँ ? मुझमें ऐसा क्या है जिसमे "मैं" की भावना है ?

मेरे हाथ, मेरे पैर, मेरा सिर, मेरा शरीर, पर मैं कौन हूँ ?

मैं कहाँ से आया हूँ ? मेरा तन तो यहीं रहेगा, तो मैं कहाँ जाऊंगा, परमात्मा क्या करता है ?

मैं यहाँ क्या करूँ ? मेरा लक्ष्य क्या है ? मुझे यहाँ क्यूँ भेजा गया ?

इन सबका उत्तर तो केवल वेदों में ही मिलेगा क्योंकि वेद ही सनातन हैं रामायण व भागवत व महाभारत आदि तो ऐतिहासिक घटनाएं है, जिनसे हमे सीख लेनी चाहिए और इन जैसे महापुरुषों के दिखाए सन्मार्ग पर चलना चाहिए ।लेकिन उनको ही सब कुछ मान लेना, और वेद जो स्वयं परमात्मा का ज्ञान है उसकी अवहेलना कर देना केवल मूर्खता है।

तो आइये वेदो की ओर चलें और समझे अपने सत्य सनातन वैदिक धर्म और ईश्वर को। यही सनातन सत्य है। जिससे आज हिन्दू समाज कोसों दूर है।

-सम्पादक

## वेद प्रवचन

**बारहवाँ मन्त्र**

-पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

-ऋग्वेद-१०.७१.२।।

अन्वय - तितउना सक्तुं इव यत्र मनसा पुनन्तः धीराः वाचं अक्रत । अत्र सखायः सख्यानि जानते (जानन्ति)। भद्रा लक्ष्मीः एषां वाचि अधि निहिता अस्ति ।

अर्थ- जैसे (तितउना) चलनी में छानकर (सक्तुम् इव) सत्तू को साफ किया जाता है, उसी प्रकार (यत्र) जिस विषय में (धीराः) बुद्धिमान् लोग (मनसा) ज्ञानरूपी चलनी द्वारा (वाचम्) वाणी को (पुनन्तः) शुद्ध करके (अक्रत) प्रयोग करते हैं (अत्र) वहाँ (सखायः) हितैषी विद्वान् लोग (सख्यानि) हित की बातों को (जानते) समझते हैं। (एषाम् वाचि) उनकी वाणी में (भद्रा लक्ष्मीः ।) कल्याणप्रदा लक्ष्मी (अधि निहिता) रहती है।

व्याख्या- इस मन्त्र का आरम्भ 'उपमा' से होता है। सक्तु अर्थात् सत्तू और तितउ अर्थात् चलनी उपमाएँ हैं। 'वाचं' वाणी और 'मनस्', बुद्धि उपमेय हैं। समस्त वाक्य को कहेंगे 'उपमान प्रमाण।' न्यायदर्शन में गौतम महामुनि चार प्रमाणों का उल्लेख करते हैं- (१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) उपमान, (४) और शब्द। इन प्रमाणों द्वारा ही मनुष्य को ज्ञान की उपलब्धि होती है। इनमें मुख्य या मौलिक प्रमाण प्रत्यक्ष ही है। ''प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्'' अर्थात् जो वस्तु प्रत्यक्ष है उसके लिए अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। इससे यह सिद्ध होता है कि जब प्रत्यक्ष उपस्थित न हो तभी दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता पड़ती है। इस विषय में तर्कवादियों ने प्रायः भूल की है। कुछ का कथन है कि जिसका प्रत्यक्ष नहीं होता जैसे ईश्वर, उसकी प्रत्यक्ष के अभाव में अन्य प्रमाणों द्वारा सिद्धि भी कैसे होगी, क्योंकि अन्य प्रमाणों का आधार तो 'प्रत्यक्ष' है। जब आधार ही नहीं तो आधेय कैसा ? यह युक्ति प्रायः जैन आदि नास्तिकों ने आस्तिक्य के विरोध में दी है परन्तु आनुषंगिक रूप में यहां हम स्पष्ट कर दें कि अनुमान आदि का प्रयोग ही वहाँ होता है जहाँ 'प्रत्यक्ष' न लग सकता हो। यह ठीक है कि अनुमान आदि शेष प्रमाणों का प्रमाणत्व प्रत्यक्ष प्रमाण के आधार पर है परन्तु प्रमाण और प्रमेय में भेद है, जो प्रमेय प्रत्यक्ष हो गया उसके लिए दूसरा प्रमाण खोजने की आवश्यकता नहीं। 'तुला' अर्थात् तराजुएँ किसी मुख्य तराजू के आधार पर बनाई जाती हैं, परन्तु सब वस्तुएँ मूल तराजू से ही नहीं तोली जा सकतीं, जब मुख्य तराजू नहीं मिलती तभी दूसरी तराजुओं का प्रयोग होता है।

'प्रत्यक्ष' और 'उपमान' का यह सम्बन्ध दिखाने के पश्चात् देखना चाहिए कि उपमान है क्या? साधारणतया उपमा और उपमेय में 'साधर्म्य' (समान गुण) होना चाहिए परन्तु संसार की कोई दो वस्तुएँ ऐसी नहीं जिनमें साधर्म्य न हो। सुअर की पूंछ और हाथी के माथे में भी साधर्म्य है अर्थात् दोनों पंचभूतों के बने पदार्थ हैं परन्तु कभी किसी ने हाथी के माथे के लिए सुअर की पूंछ की उपमा नहीं दी, क्योंकि गौतम जी ने उपमान के जो लक्षण दिये हैं उनसे सुअर की पूंछ और हाथी का माथा लक्षित नहीं होते। ''प्रसिद्धसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम्।'' (न्यायदर्शन १-१-६) यहाँ (साधर्म्य) के साथ 'प्रसिद्ध' शब्द का विशेषण देना बड़े महत्त्व की चीज है। इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। साधर्म्य ऐसा हो जो झट से दिखाई दे जाए। इसके लिए उपमा में दो गुण होने चाहिएँ- एक तो वह स्थूल हो, दूसरे बहु-परिचित। अज्ञात उपमेय को ज्ञात उपमा से नापते हैं। यदि उपमा अज्ञात हो तो उससे उपमेय के जानने में सुगमता न होगी। जैसे कोई कहे कि आपके घर पर ठहरने में मुझे स्वर्ग का जैसा आनन्द हुआ। यहां 'उपमा' स्वर्ग है और 'उपमेय' निवास का सुख है। स्वर्ग अज्ञात है, प्रसिद्ध साधर्म्य नहीं, अतः उपमा अनुचित है। वेद में बहुत-सी उपमाओं का प्रयोग हुआ है। वहाँ सर्वत्र उपमाएँ उपमेयों की अपेक्षा अधिक स्थूल और अधिक परिचित है।

इस मन्त्र में सत्तू और चलनी (सक्तु और तितउ) घर की दैनिक वस्तुएँ हैं। ये सुपरिचित हैं। इन्हीं की उपमाओं का प्रयोग 'वाचं' और 'मनसा' दोनों सूक्ष्म उपमेयों के लिए किया गया है। यद्यपि साधारण अर्थों को समझने के लिए हमारे इस लम्बे व्याख्यान की आवश्यकता नहीं थी, परन्तु वेद में तो सभी विद्याओं का समावेश है। वेद साहित्य और दर्शन के विषय में भी कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्षरूप से एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं, अतः हमने आवश्यक समझा कि कुछ प्रसंग से बाहर होते हुए भी एक जटिल प्रश्न पर कुछ व्यावहारिक प्रकाश डाल दें। इससे वेदों के साहित्यिक अलंकारों की शोभा की भी आभा का आनन्द मिलता है।

अब मन्त्र की मुख्य व्याख्या पर ध्यान दीजिए। उपमान से ही आरम्भकरें। सत्तू को छानने के लिए 'तितउ' चलनी या सूप का प्रयोग किया जाता है। क्यों ? बिना छाने हुए सत्तू का क्यों प्रयोग नहीं करते ? दो कारणों से। एक तो इतर पदार्थ न मिला हो, जैसे कूड़ा, तिनके या रेत आदि। तितउ का काम है कि वह असली सत्तू से इतर पदार्थ को निकालकर फेंक दे। दूसरे, सत्तू की भूसी या वह कर्कश अंश दूर हो जाए जिसके कारण सत्तू को पचाने में कठिनाई पड़ती हो। सत्तू शुद्ध हो और कर्कश न हो।

वाणी में भी दो गुण होने चाहिएँ। वह सत्य और प्रिय हो। ''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्।'' अप्रिय सत्य 'सत्य' होते हुए भी निषिद्ध है, क्योंकि उसमें कर्कशता है। सत्तू के पीसने में त्रुटि है। सत्तू इतना मोटा पिसा है कि वह खाने में नहीं आता। जो वाणी उचित सावधानी के साथ नियोजित नहीं की गई वह सत्य होते हुए भी लड़ाई का कारण होती है। काने को काना कहकर पुकारना लड़ाई मोल लेना है। सत्तू में इतर पदार्थ की मिलावट के समान ही सत्य वाणी में इधर-उधर की ऊटपटांग मिला देना है। इसलिए असत्य प्रिय हो तब भी न बोले। राजदरबारों में नित्य ही प्रिय असत्य बोला जाता है। इससे मनोरंजन तो होता है परन्तु साथ ही हानि भी बहुत होती है। इंग्लैण्ड के एक राजा कैन्यूट (Canute) की कहानी प्रसिद्ध है। उसके खुशामदी दरबारी कहा करते थे कि महाराज, आपकी आज्ञा तो समुद्र भी मानता है। राजा ने एक दिन आज्ञा दी कि उसकी कुरसी एक ऐसे स्थान पर रख दी जाए जहां समुद्र की तरंगों का आवेग हो। दरबारियों को आशंका हुई। वे बोले, ''महाराज ! यहां तो समुद्र की लहरें आयेंगी ?'' राजा बोला, ''समुद्र से कह दो कि अपनी तरंगें रोक ले।'' दरबारियों ने कहा, ''समुद्र कैसे मानेगा ?'' राजा ने कहा, ''तुम तो कहा करते थे कि समुद्र राजा का 'आज्ञाकारी है! तुम ऐसा झूठ क्यों बोला करते हो?'' दरबारी लज्जित हो गये। अन्य राजा भी इसी प्रकार करते तो उनको कभी धोखा न खाना पड़ता।

इसलिए वेदमन्त्र कहता है कि 'वाचं' अर्थात् वाणी को छानकर बोलो। उसमें से असत्यता (इतर पदार्थ foreign matter) और अप्रियता (कर्कशता indigestible matter) को निकाल दो।

ऐसी कौन-सी चलनी (तितउ) है जिससे वाणी के ये दोनों अवगुण दूर हो सकें ? मन्त्र उत्तर देता है - तुम्हारी बुद्धि (मनः) ही ऐसी चलनी है। बुद्धि या तर्क से शुद्ध करके वाणी को बोलो। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थों से 'इतर' और 'कर्कश' दो पदार्थों को निकालने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के चलने बनाये गये हैं, इसी प्रकार वाणी से असत्यता और अप्रियता के दूर करने के लिए बृहद् तर्कशास्त्र का निर्माण हुआ है। न्यायदर्शन का पहला सूत्र 'प्रमाण' से आरम्भ होता है और 'निःश्रेयसाधिगमः' अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति पर समाप्त होता है। यह वेदमन्त्र भी सत्तूरूपी उपमान से आरम्भहोकर 'लक्ष्मी' (भद्रा लक्ष्मी) पर समाप्त होता है, अर्थात् यदि हम बुद्धि से छानकर वेदवाणी का प्रयोग करेंगे तो हम को परम शान्ति की प्राप्ति होगी।

वेद-वाणी विद्या की निधि है, इसी के द्वारा मनुष्य हित और अहित में विवेचन करता है। बुद्धिपूर्वक वाणी का प्रयोग करने वाले (सखायः) मित्र लोग (सख्यानि जानते) स्वहितों को पहचानते हैं और अपनी विद्या द्वारा शान्ति की स्थापना करते हैं। जो बुद्धिरूपी चलनी का प्रयोग नहीं करते उनकी वाणी अशुद्ध सत्तुओं के समान कलह, भ्रान्ति और ह्रास का कारण बन जाती है। सभी को विदित है कि मनुष्य ही केवल एक भाषा-भाषी प्राणी है। यही मनुष्य-जीवन का गौरव है परन्तु जब यही भाषा बिना बुद्धि के प्रयुक्त की जाती है तो मनुष्य जाति उन भीषण दोषों से दूषित हो जाती है जो दोष किसी पशु-पक्षी या कीट-पतंग में ही नहीं पाये जाते। कहते हैं कि द्रौपदी ने अपनी अज्ञानता और बुद्धिहीनता के कारण कौरवों पर एक ताना कस दिया कि ''अन्धों के अन्धे ही उत्पन्न होते हैं।'' यह वाणी का दुरुपयोग था और उस छोटे-से दोष का कितना भयानक परिणाम हुआ ! यह तो एक प्रसिद्ध उदाहरण है परन्तु ऐसे उदाहरण हमें परिवार और हर जीवन-क्षेत्र में मिलेंगे जिन्होंने संसार को दुःख के सागर में निमग्न कर दिया। इसीलिए स्मृतिकार ने यह चेतावनी दी थी-

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता।।

(मनु० अध्याय २, श्लोक १५९)

शेष पृष्ठ-७ पर देखें.....

# ‘‘गीता आर्य समाजी हो गई’’

प्रबुद्ध-सुधी पाठकों को यह शीर्षक आश्चर्यचकित करने वाला प्रतीत होगा, किन्तु यह शीर्षक है बहुत पुराना। जब पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर पधारे हुए थे, प्रातः काल गंगा के तट पर बैठकर तन्मयता से वे गीता का पाठ (पारायण) का रहे थे। इस दृश्य को देखकर एक पौराणिक व्यक्ति जो पूज्य स्वामी (समर्पणानन्द) जी को पहचानते थे, उन्होंने अपने एक आर्यसमाजी मित्र को संकेत करते हुए कहा कि- जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले, देखो तुम्हारे आर्यसमाज के धुरन्धर विद्वान् भी कितनी तन्मयता से गीता का पाठ कर रहे हैं। वह आर्यसमाजी व्यक्ति पण्डित जी को गीता पाठ करते हुए देखकर स्तब्ध रह गया और वह इतना विचलित हो गया कि पाठ करते हुए ही श्री पण्डित जी के निकट जाकर उनसे कहने लगा कि क्या पण्डित जी आप पौराणिक हो गये ? पण्डित जी ने तत्काल उसे पूछा कि तुमको यह भ्रम कैसे हो गया कि मैं पौराणिक हो गया ? तब प्रश्नकर्तृता ने कहा कि यह तो प्रत्यक्ष ही है कि आप वेद, दर्शनादि का पाठ न करके गीता का इतनी तन्मयता से पाठ कर रहे हैं। ‘तो गीता का पाठ करने मात्र से तुम्हारी दृष्टि में मैं पौराणिक हो गया, तुम्हें ज्ञात नहीं, गीता आर्यसमाजी हो गयी है, क्योंकि इसका पाठ बुद्धदेव कर रहा है। प्रश्नकर्तृता महोदय अट्टहास करने लगे और उनके पौराणिक मित्र पर जो आघात हुआ उससे वे अति लज्जित हुए।

इस घटना को लिखने का तात्पर्य यही है, कि जिस प्रकार से पण्डित जी ने शतपथ ब्राह्मण के उद्धार का बीड़ा उठाया था, उसी प्रकार से उन्होंने गीता के उद्धार का भी संकल्प लिया था और उनका नियम था कि ‘जब तक मैं गीता की वैदिक व्याख्या नहीं लिख लूँगा, तब तक इसका प्रतिदिन पाठ करता रहूँगा।‘ इसकी सत्यापना माता शकुन्तला गोयल (मेरठ) जो एक सुप्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी एवं आर्यसमाज की कार्यकर्ती थी, वें सन् १९५१ में मेरठ में सम्पन्न होने वाले सार्वदेशिक आर्यमहासम्मेलन की स्वागताध्यक्षा तथा मॉरिशस में होने वाले आर्यमहिला सम्मेलन की अध्यक्षा भी थीं, उन्होंने बताया कि- ‘जब भी कभी पण्डित जी मेरठ कार्यक्रम में आते थे तो हमारा घर ही उनका आवास होता था। मैंने उनको तीन बजे प्रातः उठकर गीता का पाठ करते हुए बहुधा देखा है।‘ सन् १९६४ (आर्य समाज हनुमान रोड, दिल्ली) में जब गीता-भाष्य पूर्ण हो गया तभी उन्होंने अपने नियमित गीतापाठ के क्रम का परित्याग किया।

गीता पर अनेक भाष्य हुए। आद्य शंकराचार्य जी महाराज के भाष्य से पहले भी गीता, पर अनेक भाष्य थे, इसका ज्ञान हमें श्री आचार्य जी के भाष्य से ही होता है, क्योंकि श्री शंकराचार्य जी ने लिखा है कि गीता के जितने भी अपभाष्य हुए हैं उनका समाधान करते हुए मैं यह भाष्य लिख रहा हूँ। किन्तु आश्चर्य है कि आचार्य जी के भाष्य से पूर्ववर्ती भाष्य हमें उपलब्ध नहीं होते। जिस प्रकार महाकवि कालिदास के ग्रन्थों पर की गयी अनेक टीकाओं से असन्तुष्ट आचार्य मल्लिनाथ ने लिखा-

भारती कालिदासस्य दुर्व्याख्या
विषमूर्च्छिता।
एषा संजीवती टीका
तामद्योज्जीवयिष्यति।।

तथा मृतप्रायः हुए कालिदास-काव्यों को संजीवनी प्रदान की, उसी प्रकार भगवद्गीता के अनेकानेक भाष्यों से असन्तुष्ट पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज ने गीता के कायाकल्प के लियें समर्पण-भाष्य का संकल्प लिया।

अस्तु जब स्वामी जी ने गीता के आर्यसमाजी होने का डिण्डिम घोष किया तो आर्य पुरुषों की जिज्ञासा वृद्धि को प्राप्त हुई कि अन्ततः वे कौन सी पंक्तियाँ हैं, जिनका पण्डित जी ने वैदिक अर्थ किया है, तो हम उद्धत कर रहे हैं। उनके प्रथमाध्याय की व्याख्या का एक स्थल ‘‘महाभारत का युद्ध भारत के इतिहास की एक सच्ची घटना है, कपोल कल्पना नहीं। उस घटना का प्रयोग महाकवि वेदव्यास जी ने मनुष्य को धर्म का सच्चा स्वरूप दिखाने के लिए अपने काव्य में किया है और दैवी सम्पत्ति की सेना के संचालक का स्वरूप योगिराज कृष्ण को दिया है। भाव कृष्ण वार्ष्णेय के, शब्द कृष्ण द्वैपायन के, घटना इतिहास की। ‘‘अहो लोकोत्तरः संगमः।’’ (१.२ की व्याख्या में) यहाँ इन तीन-चार पंक्तियों के द्वारा ही पण्डित जी ने गीता को अनैतिहासिक कहने वालों पर वज्रपात कर दिया, अन्यथा आधुनिक गीता के व्याख्याता तो अपनी मनमानी, मिथ्याकल्पना करते रहते थे। अब गीता के जो श्लोक पौराणिकता की पुष्टि में उद्धत किये जाते थे, उन पर पूज्य स्वामी जी महाराज की वैदिक व्याख्या द्रष्टव्य है-

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः
सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मो
ऽभिभत्युत।।-१.४०

इसका अर्थ करते हुए तथा उसकी विशेष व्याख्या करते हुए श्री पण्डित जी ने लिखा है- ‘उत्तम कुलों के क्षय हो जाने पर कुलपरम्पराएँ नष्ट हो जाती हैं और उन परम्पराओं के नष्ट होने पर अधर्म सम्पूर्ण कुल हो दबा लेता है। (विशेष व्याख्या) ‘हर उत्तम कुल की कुछ पवित्र परम्पराएँ और एक न एक लोक-कल्याणकारी संकल्प होता है, जो हर संकट में उन्हें बड़े से बड़ा बलिदान करने के लिए प्रेरित करता है। ये सब कुल-धर्म कहलाते हैं किन्तु कुल के नेताओं के मारे जाने पर ये सनातन कुल धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नष्ट होने पर जब उस कुल के सदस्यों के सामने बलिदान के लिए प्रेरणा देने वाला कोई लक्ष्य नहीं रहता तो सारे कुल में स्वार्थ और आपाधापी का बोलबाला हो जाता है और अधर्म सारे कुल को दबा लेता है।

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति
कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते
वर्णसंकरः।। १.४१

हे कृष्ण ! अधर्म के अधिक बढ़ जाने पर कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं। हे वार्ष्णेय ! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है। (विशेष व्याख्या) हे कृष्ण ! इस संसार में धर्म तथा उच्च भावनाओं का अन्तिम दुर्ग स्त्री-हृदय है। किन्तु जब चारों ओर अधर्म का बोलबाला हो जाता है तो यह अन्तिम दुर्ग भी टूट जाता है। एक तो चुनाव का क्षेत्र संकुचित हो जाने से विवाह भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार नहीं हो पाते और गुप्त व्यभिचार भी बहुत फैल जाता है, तो चारों ओर स्त्रियों के दूषित हो जाने से हे वार्ष्णेय ! वर्णसंकर फैल जाता है।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां
कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां
लुप्तपिण्डोदकक्रियाः।। १.४२

जहाँ वर्णसंकर विवाह होता है अथवा व्यभिचार होता है, वहाँ परस्पर गुण, कर्म, स्वभाव न मिलने से कुल नरक बन जाता है और इस प्रकार के कुलघाती और वह कुल जहाँ इस प्रकार के लोग ही नरक जीवन बनाने के लिए ही साधन करते हैं और जब युद्ध में जवान लोग मारे जाते हैं तो बूढ़े लोगों को आपातकाल में वानप्रस्थाश्रम छोड़कर घर सम्भालना पड़ता है तथा जीवन भर की सैनिक वृत्ति छोड़कर लकड़ियों का टाल खोलने जैसा कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार वे वर्ण और आश्रम दोनों ओर से पतित होते हैं, क्योंकि उन बूढ़ों और छोटे बच्चों को पिण्ड तथा उदक अर्थात् अन्न और जल देने वाला कोई नहीं रहता। यहाँ आपने गीता के पिण्ड दान के समर्थक श्लोकों की व्याख्या पण्डित जी द्वारा की हुई पढ़ी।

अब गीता के वे गूढ़-स्थल जिनकी कि पूर्ववर्ती आचार्यों ने तथा परवर्ती हिन्दी के गीता व्याख्याकारों ने व्याख्या की है, वह अनावश्यक, अतिविस्तृत, खींचातानीसे परिपूर्ण तथा अप्रासंगिक है। उसकी व्याख्या पण्डित जी के द्वारा लिखी हुई देखें-

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च
विकर्मणः।
अकर्मणश्य बोद्धव्यं गहना
कर्मणो गतिः।।- ४.१७

मनुष्य को कर्म का भी ज्ञान प्राप्त करना है। जैसे क्षत्रिय का धर्म है आततायी को मारना, यह कर्म का ज्ञान है। विकर्म को भी जानना है, जैसे- कोई पागल आततायी हो जाये तो उसको बाँधना तथा चिकित्सा करनी, किन्तु प्राण दण्ड नहीं देना, किन्तु यदि भूल से उसे प्राण दण्ड दे दिया तो यह विकर्म हुआ। इस विकर्म अर्थात् विपरीत कर्म का भी ज्ञान होना चाहिए। फिर अकर्म का भी ज्ञान होना चाहिए। यदि कोई आलस्यवश अकर्मण्य होकर पड़ रहा है तो यह अनुचित अकर्मण्यता है किन्तु यदि कोई मनुष्य क्षमा करने से सुधर सकता हो तो उसे दण्ड न देना शुभ अकर्मण्यता है। इसका ज्ञान अकर्म का ज्ञान है। कर्म, अकर्म तथा विकर्म तीनों का यथार्थ ज्ञान होने से कल्याण होता है। इस कर्म की गति का ठीक ज्ञान होना बड़ा कठिन है। इसलिए कहा- ‘‘गहना कर्मणो गतिः’’।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च
कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः
कृत्स्नकर्मेत्।। -४.१८

हर शुभ कर्म किसी अवस्था विशेष में अशुभ कर्म हो जाता है। उदाहरणार्थ- यदि कोई सिपाही राष्ट्र के किसी दुर्ग की अथवा नाके की रक्षार्थ पहरा दे रहा हो तो उस समय संध्योपासन की वेला प्राप्त होने पर सिपाही का संध्योपासन में लीन हो जाना घोर अशुभ है, सो इस कर्म में कब अकर्मता आ गई, यह जो जानता है तथा अकर्म में कर्म को जानता है, जैसे शत्रु अपनी रक्षा के लिए गौवें आगे करके राष्ट्र का नाश करने आवे तो उस समय गोहत्या अशुभ-कर्म में कर्तृतव्य अर्थात् शुभ-कर्मत्व में आ जाती है जैसे अर्जुन के लिए अन्याय का पक्ष लेकर सामने आए गुरु तथा पितामह का वध अकर्म में कर्म हुआ, जो इस तत्त्व को देख ले, वही मनुष्यों में बुद्धिमान् मनुष्य है। उसे ही युक्तियुक्त मनुष्य समझना और वह पूर्ण कार्य करता है, क्योंकि उसने कर्म के पूरे रूप को- उत्सर्गापवाद दोनों को जान लिया।

गीता के अन्तिम अध्याय श्लोक का भाष्य भी द्रष्टव्य है-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं
ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि
मा शुचः।।-१८.६६

हे अर्जुन ! तुझे सन्देह कैसे हो गया कि मैं तुझे पाप करने की सलाह भी दे सकता हूँ, पाप करने की सलाह देने की बात तो दूर रही, तू निश्चय रख कि तेरे हृदय में कोई पाप वासना उठती होगी तो उसे भी मैं उभरने नहीं दूँगा। इसलिये तेरी तो मैं भक्त और सखा होने के कारण व्यक्तिगत रूप से जिम्मेवारी लेता हूँ, तू और सब धर्म छोड़कर एक ही धर्म पकड़ ले कि मेरी शरण में आ जा, मैं तुझे सब प्रकार के पाप भावों से (पाप फलों से नहीं) छुड़ा दूँगा। तू दुःख मत मान।

इस प्रकार पूज्य स्वामी जी के गीता भाष्य से पूर्व गीता अद्वैत वादिनी, द्वैतवादिनी, विशिष्टाद्वैतवादिनी, द्वैताद्वैतवादिनी आदि विभिन्न मतवादों के आवर्त में निमज्जित हो रही थी एवं विभिन्न मतवादों की उत्स थी। वही पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी के भाष्य की परिप्रेक्ष्य में वैदिक सिद्धान्त पोषणी हो गई। अर्थात् गीता आर्यसमाजी हो गयी।

विस्तृत जानकारी के लिए उनके सामर्पण भाष्य का अवलोकन करें। इस भाष्य का प्रकाशन स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान से किया जाता है। इसके साथ ही स्वामी जी के अन्य प्रकाशित ग्रन्थ सोम, स्वर्ग, मरुत् सूक्त तथा पंचयज्ञ प्रकाश, कायाकल्प, वेदों के सम्बन्ध में क्या जानों क्या भूलो ? अद्भुत कुमारसंभव, शतपथ में एक पथ एवं शतपथब्राह्मण भाष्य अध्येतव्य हैं, तथा वैदिक आध्यात्मिक भक्तिरस एवं राष्ट्रीय विचारधारा की सामग्री के संकलन के साथ शोधसंस्थान से ही प्रकाशित त्रैमासिकी वैदिक शोध पत्रिका ‘पावमानी’ पढ़िए।

कुलाधिपति, गुरुकुल प्रभात
आश्रम, टीकरी,
भोला-झाल, मेरठ (उ.प्र.)
२५०५०१

# आर्यसमाज की प्रगति कैसे हो?

## एक आत्म चिन्तन

(श्री जगत्प्रिय बेदालंकार 'हिरण्यको', आचार्य अन्तर्राष्ट्रीय उपवेशक महाविद्यालय, टंकारा)

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन ने विश्व को सुख और शान्ति का धाम बनाने के लिए इस बात पर सर्वाधिक बल दिया है कि हमें सबसे पहले अनिवार्य रूप से अच्छे श्रेष्ठ व आदर्श मानव उत्पन्न करने होंगे। उसने कभी नहीं कहा कि विज्ञान की उन्नति करने अथवा चाँद और मंगल ग्रहों पर मनुष्य के चरण पड़ जाने से संसार में सुख और शान्ति व्याप जाएगी । विज्ञान की उन्नति कुछ सुविधायें मनुष्य को भले ही दे दे, परन्तु सुख और शान्ति वह कदापि नहीं दे सकती। आज तक विज्ञान ने क्या किया? यही कि मनुष्य को पारस्परिक द्वेष, घृणा और विनाश के मार्ग पर चला दिया। मनुष्य को मनुष्य बनाने का यह मार्ग नहीं है। मनुष्य को मनुष्य यदि बनाना है तो उसे कोई मजबूत सहारा चाहिये । भगवान से बढ़कर ऐसा कोई अन्य दृढ़ सहारा उसे नहीं मिल सकता। वही सृष्टि का एकमात्र आधार है। उसके सच्चे और वास्तविक स्वरूप के ज्ञान की आवश्यकता मनुष्य के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। ईश्वर का यथार्थ स्वरूप जितना स्पष्ट और तर्क संगत ढंग से वेद में वर्णित है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। इसीलिए विश्व को वेदाभिमुखी बनाना ही ऋषि दयानन्द के महत् कार्य का सारतत्व था। आर्यसमाज की स्थापना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने की। आर्य समाज द्वारा वे महान् लोकभ्युदय को संसिद्ध करना चाहते थे। अपना समस्त जीवन इसी पवित्र कार्य के लिए उन्होंने समर्पित किया। उनका जन्म ही जैसे इसके लिए हुआ हो। 'भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम।

विचारणीय प्रश्न यह है कि अपनी लक्ष्य सिद्धि में आर्यसमाज कहां तक अग्रसर हुआ? कितनी सफलता प्राप्त की ?

जीवन को यज्ञिय पद्धति से जीना आर्यत्व का लक्षण है। हम लोग साधना का मार्ग छोड़ते जा रहे है और सुविधा जीवी होने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लग पड़े हैं। आश्चर्य तो यह है कि हमें परस्पर द्वेष और घृणा करने के लिए समय मिल जाता है, जबकि स्वाध्याय आत्म चिन्तन और प्रेम करने के लिए जीवन बहुत छोटा है। दुर्भाग्य से साधना का दक्षिण-पथ हमसे छूट गया और संस्थावाद के दुश्चक्र में इस बुरी तरह फंस गये। आधुनिक संस्थावाद आधुनिक प्रजातन्त्रवाद को अवांछनीय सौगात है, जो भ्रष्टाचार की वृद्धि तो कर सकती है, किन्तु सदाचार को प्रतिष्ठित वह नहीं कर सकती। यह अत्यधिक द्वोष पूर्ण है। ब्राह्मी-वाटिका को उजाड़ने का जैसे इसने ठेका ही ले रखा है।

अंधी श्रद्धा को कोसते कोसते हमने सूझती श्रद्धा का भी परित्याग कर दिया। तर्क का अन्त नहीं। वह अन्तिम निर्णय में सदा असफल रहा है। तर्क कभी अकाट्य न हुआ है, न होगा। श्रद्धा के साथ तर्क का नहीं, चिन्तन का गठबन्धन करना होगा। चारों बेदों में तर्क कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं हुआ। बहां सर्वत्र श्रद्धा, मेघा, सुमति प्रगति एवं चिन्तन को हो सत्य की खोज एवं ऐश्वर्यों के सम्पादन का आधार माना गया है। भौतिक विज्ञान के भी सभी अन्वेषण व आध्यात्मिक विज्ञान की निखिल उपलब्धियाँ चिन्तन, धारणा, ध्यान व समाधि जन्य है, तर्क जन्य नहीं। न्याय सहित सभी दर्शनों का जनक भी चिन्तन ही है, तर्क नहीं। समाज का मेरुदण्ड साप्ताहिक अधिवेशन था। वह अब टूट चुका है। वह किसी तरह यदि ठीक हो जाए तो फिर चैतन्य आ जाए।

क्या हमारे सब कार्य-'सूत्र प्रोत। दारुमयी व योषा' अर्थात कठपुतली की तरह नहीं हो रहे ? संसार का उपकार करने वाला आर्य समाज न जानें कब से केवल हिन्दू हित की दुहाई दिये चला आ रहा है या देने लगा है। इसमें रहकर कोई क्या कार्य करे ? इसका वातावरण इतना दूषित हो चुका है कि भले आदमी को सांस लेकर रहना भी दूभर हो उठा है। आर्य शब्द का उच्चारण करते ही क्या हमें एक दिव्य स्फूर्ति का आभास होने लगता है? दीन-हीन, निस्तेज, अन्य गतिक चाटुकार पुरुष आर्य नहीं होता। उससे संसार का तो क्या अपना ही भला होने वाला नहीं। केवल व्यक्ति ही नहीं कभी कभी पूरा समाज या राष्ट्र भी भूल कर बैठता है, जिसके कारण भावी पीढ़ियों को घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ता है। विवेक द्वारा उनसे बचने के पूर्वोपाय किये जा सकते हैं।

दयानन्द का आर्यसमाज जब अर्जुन की तरह आत्म स्मृति लाभ कर जागेगा, उठेगा और लक्ष्याभिमुख हो विश्व प्रांगण में कूदेगा, तब ही वास्तविक भारतोदय होगा। हम ऋषि के सिद्धान्तों पर दृढ़ रह, अनवरत एकजुट होकर साधना के सुपथ पर अग्रसर हों। क्योंकि बलिष्ठ तपस्वी, स्वाहाकारी व सुपठित ब्रह्मचारी ही महर्षि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ा सकते हैं। राज नेता कितने भी दूध के धुले और तुला पर तुले क्यों न हों, वे

भारत की समस्याओं को कभी भी हल नहीं कर पायेंगे। इसलिये ऐ आर्यजन ! अपने बलिष्ठ हाथों के साथ, बलवती भावना के साथ वेदों को कस कर थामिए । भारत राष्ट्र की संतति आज उत्तरोत्तर अधिकाधिक कामुक, निर्लज्ज, हतप्रभ एवं दुर्नय होती जा रही है। परिणाम स्वरूप जातीय तेज, ओज शौर्य सब नष्ट हुआ जा रहा है। इस घोर संकट की घड़ी में आपके सिवाय 'को राष्ट्रमुद्धरिष्यति' । कभी मनु महाराज ने इस देश के धर्म का मूल कम से कम वेद को माना था। पर आज यह मान्यता प्ररोचना मात्र हो चली है, क्यों? वेदों में ऐसी बातों या शिक्षाओं सामाजिक, राष्ट्रीय और सार्वभौम दायित्वों एवं अधिकारों का सुन्दर प्रतिपादन करने बाली हैं। महर्षि ने वेदों के धर्म-शास्त्रीय स्वरूप एवं आधार उजागर किया। देव दयानन्द ने वेदों की धर्मशास्त्रीय, आधिभौतिक अथवा व्यवहारिक व्याख्या सरणि को पुनः प्रशस्त बनाया। वेद का वास्तविक स्वरूप कोरे प्रमाणवाद से निखरने वाला नहीं। उसके लिए तो स्वतन्त्र चिंतन ही मुख्यतः अपेक्षित है। प्रमाण बाद को तो वहीं पर स्वीकारा जाना चाहिए, जहां उससे अर्थ विकास में सहायता मिले ।

आर्यसमाज के सामने अब दो ही विकल्प हैं। या तो वह तप, घोर तप करे अन्यथा पतन घोर पतन को प्राप्त हो। गिरे, गिरे और खूब गिरे । इतना कि नाम निशान भी न बचा रहे। यदि जीवन में तपन नहीं तो पतन अनिवार्य है। सिद्धान्त आर्यसमाज के सुपुष्ट और मानने योग्य हैं। श्रद्धा उसमें हिन्दुओं की आ जाए । कार्य विशाल राष्ट्रीय क्षेत्र चुना जाए । तभी कुछ बात बनेगी। पहले जैसी धुन समाज में अब नहीं रही। इसीलिए उसे घुन खाए जा रहा है। श्रद्धावान् आत्मवान् नर-शार्दूलों में ही धुन समाया करती है। अब हम में पहले की सी स्वसिद्धान्तों के लिए अटल आस्था कहां रह गई है? सारा का सारा धन्धा वाचिक चल रहा है। ठोस कार्य कुछ भी नहीं हो रहा है। इसीलिए प्रथमतः आत्म शुद्धि अपेक्षित है। हमें अपनी धुन के पक्के धुनी लोग पैदा करने होंगे। उनकी विद्यमानता में ही समाज की डांवाडोल स्थिति संभल पाएगी। आर्य जनों में क्षमा, तितिक्षा, शान्ति, धैर्य, पारस्परिक सहानुभूति, समवेदना और सेवाभाव चिरस्थायी बनें, तभी कुछ उद्धार सम्भव है।

वेद-विचार या धर्म प्रचार में कटुता या कटाक्ष का लेशमात्र भी पुट नहीं होना चाहिए। उसमें तो प्रेम, प्रेरणा और समाधान ही अपेक्षित है। प्रचारक का शीतल सर्वतो भद्र रहना चाहिए। वेदाचार से शून्य रहकर वेद का ढोल बजाना कभी भी शोभनीय एवं श्रेयस्कर नहीं। आर्य प्रचारक तो 'स्वेम क्रतुना संववेत' अपने कर्तृत्व के साथ ही बोले। सदा जीवन की भाषा में बात करना ही उसका अलंकरण है।

करना उपकार जगत् का है हमारा लक्ष्य। पर वह लक्ष्य है हमारा अभी पूरा न हुआ। थोड़ा कर पाये हैं, करना है बहुत कुछ बाकी । जितना चाहिए था, उतना न अभी तक हुआ। यह दुआ लीजिए हमसे कि कर्म से अपने। हम वह कर कर पाएं सब जो अभी तक न हुआ।

अपने सन्दर्शन को सिद्धि में प्रभु ही हमें संभाल सकता है। अपने संकल्प में हमें स्वयं आस्थावान् और दृढ़ रहना है। वेद आत्म-साधना, विवेक और उपासना ये चारों सहचारी व अनुयायी बने रहें। वेद अन्य तीनों का मूल है, सिद्ध करने वाला है, तो विवेक हमारे वेदाचार, आत्म साधना एवं उपासना को सार्थक बनाता है। भीतर के द्वेष और बाहर के झगड़ों को समाप्त किये बिना संगठन सूक्त का दैनन्दिन पाठ साकार कैसे होगा? हमें आर्यसमाज को एक चरित्र प्रतिष्ठित संस्था फिर से बनाना होगा। संगठित रहकर हम बने रहेंगे। विगठित होकर विनाश सुनिश्चित है। मिथ्या दोषारोपण एवं निराधार निन्दा की दुष्प्रवृत्ति से क्या हम मुक्त नहीं हो पायेंगे। विश्व भर के श्रेष्ठजनों को एक सूत्र में पिरोने का उपदेश ऋषि दयानन्द ने हमें दिया था। यही उनकी वसीयत थी।

मानवात्मा आज उस ऋत 'दैवी-विधान' की सुपावन व्यवस्था के लिए चीत्कार कर रहा है, जिसमें कानून का नहीं, न्याय का राज्य हो। बहुमत का नहीं, न्यायप्रिय एवं ईश्वर परायण सज्जनों का शासन हो। सम्प्रदाय की नहीं, मानव धर्म की पूजा हो। स्वार्थ नहीं, सर्वहित भावना की जिसमें प्रतिष्ठा हो। उच्छृंखलता एवं नग्नता के स्थान पर जहां शालीन शील हो व सौम्य आधार का सन्दर्शन ही भोग और असन्तोष का स्थान जहाँ योग और सन्तोष को मिले। शासन लोलुप व स्वार्थ परायण शासकों का मस्तिष्क जब हृदयहीन हो जाता है, तब जन सुख की हानि और धर्म की ग्लानि फिर क्यों न हो ?

आज का समूचा समाज राष्ट्र व विश्व दिनानुदिन पतन की ओर दौड़ा चला जा रहा है। प्रयत्न व आयोजन सुख के लिए हो रहे हैं, मगर दुःख दारिद्रय बढ़ रहा है। कोशिश गरीबी मिटाने की है, पर मिट अमीरी रही है। लक्ष्य हमारा समानता का है, किन्तु असमानता प्रचण्ड से प्रचण्डतर होती चली जा रही है। पुकार चरित्र शोधन की है, किन्तु बोलबाला दुश्चरित्र का देखने में आता है। वस्त्रों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी है, रुझान नग्नता को ओर है। घोषणायें विश्व शान्ति की हैं, तो तैयारियां विश्व विध्वंस की सजी हैं। यह सब भयंकर चरित्र हनन व पतन दिल दहला देने वाला है। स्वराज्य में वीभत्स काण्ड निर्लज्ज नृत्य, आपाधापी कर्त्तव्य शून्यता छा जाने से चारों तरफ अराजकता का ताण्डव है। अनुशासनहीनता से विद्यालय, कार्यालय सब पट गये हैं। ये मनोरंजनालय से अधिक कुछ नहीं रह गये। कामकाज में दक्षता के अभाव में लापरवाही व उत्तरदायित्व हीनता द्रोपदी के चीर की तरह बढ़ती जा रही है। जिसका स्पष्ट परिणाम यह है कि शासन सभी कार्यों में गलतियों, विफलताओं व दीर्घ-सुत्रताओं का शिकार हो रहा है। कितनी भयावह स्थिति है।

ऋषि दयानन्द के सिपाहियो ! उठो जागो, शोला बनकर फूंक दो पाप के अम्बार को। उठो बना दो पावन फिर से अपने इस संसार को।।

**वेद के शब्दों में 'सुपर्णोऽसि गरुत्मान्, पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासान्तरिक्षमापण ज्योतिषा दिवमुत्तमान तेजसा दिशमुदृहं।।**

ऐ आर्य जाति ! तू सुपर्ण है, गौरवयुक्त है। समस्त धरती की पीठ पर सवार हो जा। अपने दिव्य प्रकाश से उसे भर दे। द्युलोक को अपनो ज्योति से थाम ले और दिशा-विदिशाओ को अपने तेज से दृढ़ बना दे।

(आर्य मित्र फरवरी, १९८८)

# इस्लाम की लम्बी सोच

-पंकज सक्सेना

कोई भी विचार जो १४०० साल पुराना है, उसे हमें लम्बी सभ्यतागत दृष्टि में ही समझना होगा। जिस तरह भारत एक सभ्यतागत राष्ट्र है, उसी तरह इस्लाम एक सभ्यतागत शक्ति है और इसे उसी प्रकार से समझा जाना चाहिए। मुसलमान यह कहते हैं कि 'इस्लाम कभी नहीं हारा'। दुखद बात यह है कि एक देश को छोड़कर यह सच है। लेकिन इसका क्या अर्थ है? कि इस्लामी सेनाएँ कभी नहीं हारी? कि युद्ध के मैदान में शत्रु उनसे कभी नहीं जीते? कि उनके इतिहास में कभी बुरे साल या दशक नहीं आये? नहीं, ऐसा नहीं है। पैगंबर मोहम्मद की मृत्यु के बाद अरब से बाहर निकलते ही इस्लामी सेनाएं पूर्व में भारत के द्वार पर पहुंच गईं और पश्चिम में स्पेन में यूरोप के दरवाजे खटखटाने लगीं। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उस समय के दो महान साम्राज्यों ने लगभग तुरंत ही इस्लाम के सामने घुटने टेक दिए। उस समय के सबसे महान साम्राज्यों में से एक, फारस, २० वर्षों के भीतर इस्लामी सेनाओं के आगे हार गया। फारस पर शासन करने वाले ससेनिड शासक बाईजेंटियम साम्राज्य के साथ अपने निरंतर युद्धों से थक चुके थे। केवल २० वर्षों में उनका साम्राज्य नष्ट हो गया था, और पारसी धर्म समाप्त हो गया। यहां एक बात ध्यान देने योग्य है: इस्लामी सेनाएं राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीत पर कभी नहीं रुकीं। उनके लिए एक जीत तब तक जीत नहीं थी जब तक कि यह इस्लाम की जीत न हो। इसलिए युद्ध जीतने के बाद मुस्लिम सेनायें तलवार की नोक पर धर्म परिवर्तन कराती थीं। जजिया भी युद्ध के पश्चात तुरंत लागू किया जाता था जो इस्लाम के तहत गैर-मुस्लिम होने का कर था। आप केवल एक बहुत बड़े जजिया कर का भुगतान करके ही गैर-मुस्लिम बने रह सकते थे। यह कर कभी-कभी ७५% होता था। इसने निर्धारित हो गया कि सभी गैर-मुस्लिम अंततः इस्लाम में धर्मान्तरित हो जाएंगे।

गैर-मुसलामानों का धर्म परिवर्तन एक मुसलमान का सबसे पवित्र कर्तव्य था। इस्लाम के प्रकाश को सभी तक पहुंचाना जिहाद का लक्ष्य था। इस्लामी सेना से हारने के पश्चात गैर मुसलमान के पास तीन विकल्प थे - मृत्यु, इस्लाम में धर्मांतरण, या जजिया कर देना। जजिया से इस्लाम को बहुत लाभ होता था और अंततः कर के बोझ तले दबे गैर-मुसलमान इस्लाम अपना लेते थे। एक बार इस्लाम अपनाने के पश्चात उसको छोड़ने का कोई भी प्रावधान इस्लाम में नहीं था। आप इस्लाम में प्रवेश कर सकते हैं, लेकिन आप इस्लाम को कभी नहीं छोड़ सकते"। इस्लाम छोड़ने की सजा मृत्यु है। यह बहुत महत्वपूर्ण है। इस तरह इस्लाम सदैव बढ़ता ही गया। इसका ग्राफ धीमा होने पर भी कभी नीचे नहीं जाता। इसके कई अन्य निहितार्थ थे। 'ऑलवेज इन, नेवर आउट' के इस कानून का अर्थ था कि इस्लाम के विरोधियों को इस्लाम के विरुद्ध बार-बार जीतते रहना आवश्यक है एक अंतहीन श्रंखला में, परन्तु इस्लाम को केवल एक बार जीतने की आवश्यकता है। क्योंकि एक बार जीतने के बाद वे हारने वालों को मुसलमान बना लेते हैं। और इस प्रकार से एक शत्रु इस्लाम का मित्र बन जाता है। इसका विश्व के इतिहास पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसने सुनिश्चित किया कि जबकि गैर-मुसलमानों को सदैव जीतते रहने की आवश्यकता है, इस्लाम का केवल एक बार जीतना पर्याप्त है।

इसलिए मुसलमानों को बस प्रयत्न करते रहना था और एक बार जब वे जीत जाते थे तो वे पराजित लोगों को सदैव के लिए इस्लाम में धर्मान्तरित कर देते। एक बार जब पराजित समाज का धर्मांतरण हो जाता था और वे इस्लाम का हिस्सा बन जाते थे तो वे और अधिक उत्साह से अल्लाह के सिपाही बन जाते थे। इस तरह अरबी, फिर फारसी, फिर तुर्कों ने तलवार की नोक पर इस्लाम का प्रचार-प्रसार किया। पश्चिम में बाईजेंटियम भी इस्लामी सेनाओं से हार गया लेकिन इसने अपनी राजधानी कॉन्स्टेंटिनोपल को नहीं खोया। परन्तु इससे इस्लाम के लिए पश्चिम का रास्ता खुल गया। इस्लाम अफ्रीकी भूमध्यसागरीय तट को पार करते हुए स्पेन पहुंचा। मिस्र के पूर्व क्षेत्रों को छोड़कर रास्ते में कोई अन्य प्रमुख देश नहीं थे। इससे इस्लाम को और सहायता मिली क्योंकि यह उनके धर्म, संस्कृति और भाषा को पूरी तरह से बदलने में सफल रहा। इस्लामी सेनाओं के अभूतपूर्व विस्तार के प्रारम्भिक छह या सात दशकों के बाद, इसकी सफलता भारत के द्वार पर रुक गयी और वह भारत के अन्दर प्रवेश नहीं कर सका। अब प्रश्न यह आता है कि ये सेनाएं भी कभी न कभी तो हारी होंगी। क्या तब इस्लाम हार गया? नहीं। ऐसा नहीं है। जब इस्लामी सेनायें गैर-मुसलमान जनता पर राज करती थीं तो वह जनता इस्लाम में धर्मान्तरित हो जाती थी। पर तब क्या होता था जब गैर-मुस्लिम राजा इस्लामी जनता पर शासन करते थे? क्या गैर-मुसलामानों ने मुसलमानों को फिर से मूर्तिपूजक बनाया? नहीं। जब मंगोल शासक हलाकू खान ने बगदाद को १२५८ ई में जीता तो उसने अब्बासिद इस्लामी खलीफा को घोड़ों के पैर तले कुचलवा दिया और बगदाद में मुसलमानों का नरसंहार किया। यह इस्लामी सत्ता की पहली सांझ थी। मूर्तिपूजक-बौद्ध तुर्को-मंगोल शक्ति ने इस्लाम की राजनीतिक और सैन्य शक्ति को पूरी तरह से नष्ट कर दिया था। लेकिन क्या इसने इस्लाम को बुरी तरह प्रभावित किया? बिल्कुल भी नहीं। इससे उन्हें वास्तव में लाभ हुआ। हलाकू खान (खान एक मूर्तिपूजक उपाधि है) एक मूर्तिपूजक-बौद्ध था, लेकिन अधिकांश अन्यजातियों की तरह वह दूसरों के 'धर्मों' का सम्मान करता था। वह यह पहचानने में असफल रहा कि इस्लाम धर्म नहीं था। यह एक ऐसा मजहब था जो सभी धर्मों को समाप्त करना चाहता था।

हलाकू खान ने कभी मुसलमानों को धर्मांतरित करने का प्रयत्न नहीं किया। बल्कि उसने उन्हें इस्लाम का पालन करने की पूरी छूट दी। इसलिए जब इस्लामी सेनाएं हार गईं, और मुसलमानों का नरसंहार हुआ तब भी इस्लाम नहीं हारा क्योंकि साम्राज्य का धार्मिक विन्यास पूरी तरह से इस्लामी बना रहा। हलाकू का पुत्र और उत्तराधिकारी, अबाका खान, एक बौद्ध था। उसका बेटा और अगला शासक, उनका पुत्र अर्घुन खान भी एक बहुत ही धर्मनिष्ठ बौद्ध था। लेकिन उसने भी अपनी मुस्लिम जनता को धर्मान्तरित करने का प्रयत्न नहीं किया। बगदाद के मूर्तिपूजक शासकों की तीन पीढ़ियों ने अपनी मुस्लिम प्रजा को धर्मान्तरित करने का प्रयत्न नहीं किया। और ध्यान रखें कि कोई भी मुस्लिम शासक अपनी प्रजा को इस्लाम में धर्मान्तरित करने का एक भी अवसर नहीं जाने देता था। इस्लाम प्रतीक्षा कर रहा था पासा पलटने का। इस बीच, मुस्लिम उम्मा लगातार मंगोल दरबार को एक-एक करके इस्लाम में धर्मान्तरित कर रहे थे: अधिकतर यह कहते हुए कि यह मंगोल शासकों को मुसलमानों पर शासन करने में सहायता करेगा यदि वे इस्लाम का पालन करते हैं, उदासीनता और अज्ञानता में अरघुन खान ने इस पर ध्यान ही नहीं दिया।

अर्घुन एक धर्मनिष्ठ बौद्ध थे लेकिन उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि मुसलमानों को बौद्ध धर्म अपनाना चाहिए। इस्लाम अपना समय बिता रहा था। इस्लाम का समय आया जब अरघुन का पुत्र गजान इल-खानेत का चौथा प्रमुख सम्राट बना। गजान को इब्न तैमियाह मुस्लिम बनने के लिए प्रेरित कर रहे थे। इब्न तैमियाह बहुत ही महत्वपूर्ण इस्लामी विद्वानों में से एक थे और बहुत ही असहिष्णु थे। अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिए गजान मुस्लिम हो गया। और अंत में इस्लाम की जीत हुई। मुस्लिम प्रजा गैर-मुस्लिम शासकों की चार पीढ़ियों के बाद एक गैर-मुस्लिम सम्राट को धर्मान्तरित करने में सफल रही। इस्लाम तब भी जीतता है जब एक मुस्लिम सेना एक गैर-मुस्लिम देश को हरा देती है: तब मुस्लिम राजा गैर-मुसलमानों को परिवर्तित करते हैं। इस्लाम तब भी जीतता है जब गैर-मुस्लिम सेना एक मुस्लिम देश को हरा देती है: इस स्थिति में मुस्लिम जनता गैर-मुस्लिम राजा को धर्मान्तरित करती है। और दोनों ही प्रसंगों में इस्लाम की जीत होती है।

इस्लाम को केवल एक बार जीतने की आवश्यकता है। इल-खानेत का उत्तराधिकारी ईरान अभी भी १००% मुस्लिम देश है। उन्होंने कभी किसी अन्य धर्म को अपनी भूमि पर पनपने नहीं दिया।

इस्लाम को केवल एक बार जीतने की आवश्यकता है। जबकि गैर-मुसलमानों को इस्लाम को रोकने के लिए सदैव जीतते रहने की आवश्यकता है। यह स्थिति तभी बदल सकती है जब स्थिति अनुकूल होने पर गैर-मुसलमान भी मुसलमानों को धर्मांतरित करने का प्रयत्न करें।

---

पृष्ठ...१ के शेष....(उपदेशक के रूप में महर्षि दयानन्द)

वाणी स्मरण आती है:

आप चाहे हाईकोर्ट के न्यायाधीश हों चाहे गवर्नर (लाट) साहब के प्रधानतर सचिव, आप बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य हों चाहे वाग्मिता में सिसरो (Cicero) और गिटे (Goethe) से भी बढ़कर, आप अपने देश में पूजित हों अथवा विदेश में, आप की ख्याति का डंका बजा हो, आप सरकारी कानून को पढ़कर सब प्रकार से अकार्य्य और कुकार्य को आश्रय देने वाले अटर्नी (Attorney) कुल के उज्ज्वलतम रत्न हों चाहे मिष्टभाषी, मिथ्योपजीवी सर्वप्रधान, स्मार्तृत (वकील) परन्तु यदि किसी अंश में भी आप मूर्त्तिपूजा का समर्थन करेंगे, तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी संकोच नहीं होगा कि आप किसी अंश में भी भारतवर्ष के मित्र नहीं हो सकते, क्योंकि मूत्तिपूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है। (महर्षि दयानन्द जीवनचरित, भूमिका, पृ. २७)

प्रिय पाठको! निष्पक्ष सोचिए और बुद्धिपूर्वक निर्णय लीजिए।

दयानन्द का एक और प्रबल प्रहार था साकारवाद (अर्थात ईश्वर के अवतार लेने की गलत धारणा) पर। वेदों में ईश्वर को सर्वव्यापक और निराकार बताया गया है:

वह सर्वव्यापक परमात्मा किसी भी प्रकार के शरीर स्थूल, सूक्ष्म या कारण से रहित है। वह कभी किसी माता के गर्भ से नहीं आता। वह स्वयंप्रकाशमान, स्वयंभू और सर्वज्ञ है। (स पर्यगात्...यजुर्वेद ४०.८)

वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। वही पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है। (स्कम्भो दाधार...और यः श्रमात् तपसो... अथर्ववेद १०.७.३५-३६)

यहाँ दयानन्द का मूल बिंदु अत्यंत महत्त्वपूर्ण है: जब ईश्वर सर्वशक्तिमान और सबका आधार है, तो फिर वह स्वयं किसी चीज या शरीर का आधार कैसे ले सकता है? अगर वह किसी चीज या शरीर का आधार लेता है, तो वह सर्वशक्तिमान नहीं रहा। अगर वह किसी का शरीर आदि का सहारा नहीं लेता, तो सिद्ध होता है कि वह निराकार है, क्योंकि शरीर का आधार लेने वाला तो साकार ही कहा जाएगा।

इस प्रकार दयानन्द ने साकारवाद और अवतारवाद की मजबूत दीवार को एक ही प्रहार से ध्वस्त कर दिया।

इसीलिए उन्होंने खुले शब्दों में कहा कि श्रीराम और श्रीकृष्ण न तो ईश्वर हैं और न ही ईश्वर के अवतार। वे महान् व्यक्ति थे, आत्माएँ थे, परंतु उन्हें सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, निराकार परमात्मा के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। इसलिए श्रीराम और श्रीकृष्ण की पूजा ईश्वर के रूप में करना एक दार्शनिक और आध्यात्मिक भूल है।

कोई भी आत्मा, चाहे वह कितनी भी महान् क्यों न हो, ईश्वर का स्थान नहीं ले सकती, क्योंकि आत्मा सीमित ज्ञान वाली होती है और ईश्वर असीम ज्ञानस्वरूप होता है। क्या कोई आत्मा, चाहे वह कितनी भी साधना करे, सूर्य, चंद्रमा, पृथ्वी या ब्रह्मांड की रचना कर सकती है? नहीं। तो फिर राम और कृष्ण को ईश्वर मानने की यह सारी दलीलें व्यर्थ हैं। आत्मा सदा आत्मा ही रहती है और ईश्वर सदा ईश्वर ही।

इस प्रकार दयानन्द ने हिन्दू धर्म में उसके प्राचीन तत्त्व और उसकी महिमा को पुनः स्थापित किया। यही कारण है कि दयानन्द को उपदेशकों में एक विशेष स्थान प्राप्त है वे अपने आप में अकेले हैं।

# विश्व में ईश्वरीय ज्ञान वेद का धारक, रक्षक एवं प्रचारक केवल आर्यसमाज है

-मनमोहन आर्य

प्रश्न क्या परमात्मा है? क्या वह ज्ञान से युक्त सत्ता है? क्या उसने सृष्टि की आदि में मनुष्यों को ज्ञान दिया है? यदि वह ज्ञान देता है तो वह ज्ञान उसने कब किस प्रकार से मुनष्यों को दिया था? इन प्रश्नों पर विचार करने पर उत्तर मिलता है कि परमात्मा का अस्तित्व सत्य एवं निर्विवाद है। परमात्मा की सत्ता का प्रमाण यह सृष्टि है और इसमें मनुष्यरूप व अन्य प्राणियों के रूप में हमारे अस्तित्व का होना है। किसी वैज्ञानिक व बुद्धिमान के पास इस बात का उत्तर नहीं है कि यह संसार कब, कैसे, क्यों व किस सत्ता से अस्तित्व में आया? उनके पास विचार करने के लिये कोई मार्गदर्शक ग्रन्थ व आचार्य आदि भी नहीं है। भारतियों व उनमें भी केवल आर्यसमाज के अनुयायियों के पास ही ऋषियों के उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों सहित सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर प्रदत्त ज्ञान के रूप में चार वेद विद्यमान हैं जिनकी अन्तःसाक्षी से वेद ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध होते हैं। परमात्मा है तो उसकी बनाई कृति यह सृष्टि भी है। यदि वह न होता तो इसकी यह कृति सृष्टि न होती। यदि कोई यह प्रश्न करे कि यदि यह संसार परमात्मा की कृति है, तो इसे सिद्ध कैसे किया जा सकता है? इसका उत्तर है कि संसार में ऐसी कोई सत्ता नहीं है, जो सृष्टि का निर्माण कर सकती है। सृष्टि की रचना अपौरुषेय रचना है। इसे मनुष्य अकेला व सभी सभी मनुष्य व प्राणी मिलकर भी बना नहीं सकते। यदि बना भी सकते तो प्रश्न होता है कि मनुष्य को बनाने वाली भी एक सत्ता होनी चाहिये थी। सृष्टि व मनुष्य आदि सभी प्राणियों को बनाने वाली एक ही सत्ता है और वह ईश्वर वा परमात्मा है। यदि किसी को ईश्वर का साक्षात् करना है तो उसे वेदाध्ययन वा स्वाध्याय सहित योगाभ्यास, ध्यान व समाधि को प्राप्त कर किया जा सकता है। हमारे सभी ऋषि व योगी ईश्वर का साक्षात् करते थे। ईश्वर का साक्षात् कर ही वह कहते थे 'शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः।। नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम् अवतु वक्तारम्।' कोई भी मनुष्य यदि योगाभ्यास करता है और योग के लिये आवश्यक नियमों का पालन करता है, तो वह ईश्वर का प्रत्यक्ष कर सकता है।

हम यह भी अनुभव करते हैं कि संसार में कोई भी मनुष्य यदि निष्पक्ष रूप से वेद एवं वैदिक साहित्य का अध्ययन करता है तो उसकी आत्मा ईश्वर के अस्तित्व को स्वतः स्वीकार कर लेती है। इसका एक कारण यह है कि ईश्वर हमारी आत्मा में व्यापक है। हमारा ईश्वर से व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। ईश्वर हमारी आत्माओं में निरन्तर सत्यासत्य की प्रेरणा करता रहता है। ईश्वर की प्रेरणा के लिये आवश्यक यह है कि हम शुद्ध व पवित्र अन्तःकरण वाले हों। इसका मुख्य कारण यह है कि ईश्वर स्वमेव परम शुद्ध एवं परम पवित्र चेतन एवं ज्ञानवान सत्ता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हमें अपने जीवन को सत्य विचारों एवं सत्य आचरण से विभूषित करने के साथ शुद्ध अन्न, जल एवं वायु का सेवन कर शुद्ध एवं पवित्र बनना होगा। इसी विधि से हमारे वेद एवं योग के अभ्यासी मनीषी ईश्वर का ध्यान, चिन्तन व मनन करते हुए ईश्वर का प्रत्यक्ष किया करते थे।

परमात्मा ज्ञानयुक्त सत्ता है। इसका ज्ञान उसकी अपौरुषेय विशिष्टि रचनाओं को देखकर होता है। परमात्मा ने सृष्टि सहित सभी प्राणियों की रचना की है। हम किसी व्यक्ति के ज्ञान का आंकलन उससे बात-चीत करके व उसके पत्रों व पुस्तक आदि को पढ़कर लगाते हैं। ऋषि दयानन्द के ज्ञान का अनुमान भी हमें उनकी रचनाओं व ग्रन्थों को पढ़कर ही होता है। इसी प्रकार से ईश्वर की पुस्तक यह सृष्टिरूपी रचना है। सृष्टि में परमात्मा ने जिस ज्ञान व शक्ति का प्रयोग किया है उसका तो हम व हमारे वैज्ञानिक सहस्रांश भी नहीं जानते। आज सृष्टि के १.९६ अरब वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी हम व हमारे वैज्ञानिक सृष्टि को पूरी तरह से नहीं जान सके हैं। आज भी ऐसे अनेक रोग है जिनके विषय में वैज्ञानिक व चिकित्सक जानते ही नहीं हैं। बिहार में कुछ वर्ष पहले १५० लोग बुखार से मर गये थे। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में इसका कहीं उल्लेख नहीं है। अतः चिकित्सकों को इस बीमारी का ज्ञान नहीं था। उपचार तो वह रोग व उसकी ओषधि के ज्ञान के बाद ही कर सकते थे। अतः हमारी सृष्टि ईश्वर के ज्ञानवान होने का संकेत करती व पता देती है। ईश्वर ज्ञानवान अर्थात् सर्वज्ञ सत्ता है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म, रंगरूप रहित, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवं पवित्र सत्ता है। सर्वव्यापक का अर्थ है कि वह संसार में सब जगह तथा सब पदार्थों यथा जीवात्मा आदि के भी भीतर व बाहर सर्वत्र है। जीवात्मा एक चेतन सत्ता होने से ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता रखती है। सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि के मनुष्यों को ज्ञान देने वाला ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं होता। बिना ज्ञान के मनुष्य अपना कोई भी कार्य नहीं कर सकता। ज्ञान व भाषा साथ-साथ रहती हैं। अतः सृष्टि के आरम्भ में अमैथुनी सृष्टि के मनुष्यों को ज्ञान केवल ईश्वर से ही मिल सकता है। वह ज्ञान ईश्वर प्रदत्त होने से अलौकिक व दैवीय भाषा से युक्त शब्दों व व्याकरण आदि से संयुक्त होता है जो मनुष्यों की रचना की सामर्थ्य से होना सम्भव नहीं होता। ऐसा ज्ञान चार वेदों का ज्ञान है। वेदों में ईश्वर, जीवात्मा सहित सभी सत्य विद्याओं का सत्य ज्ञान है। हमारा विचार है कि यदि ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों का ज्ञान न दिया होता तो मनुष्य भाषा सहित ज्ञान की उत्पत्ति नहीं कर सकते थे। वेदों की भाषा एवं ज्ञान को देख कर इसका ईश्वर प्रदत्त होना सिद्ध होता है। सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा द्वारा ऋषियों को दिया गया वेदज्ञान ही परम्परा व गुरु-शिष्य परम्परा से लोगों को मिलता रहा है और वही वर्तमान में भी हमें सुलभ है। हमने वेदों का ज्ञान सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों को पढ़कर प्राप्त किया है, इस कारण से सत्यार्थप्रकाश व इसके रचयिता ऋषि दयानन्द हमारे गुरु व आचार्य हैं तथा वह हमारे लिए परमादरणीय हैं।

परमात्मा का अस्तित्व है, वह ज्ञानवान सर्वज्ञ सत्ता है और उसके द्वारा सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों को दिया गया ज्ञान वेद है। वेदों का यह ज्ञान कहां व किसके पास है? इसका उत्तर है यह ज्ञान ऋषि दयानन्द के समय में विलुप्त हो गया था। उसे उन्होंने अपने अथक पुरुषार्थ से प्राप्त किया था और उसके बाद अपने वेदांगों के ज्ञान से वेदों के मर्म को जानकर न केवल सत्यार्थ प्रकाश एवं ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका आदि ग्रन्थ ही लिखे थे अपितु वेदों के सत्यार्थयुक्त वेदभाष्य करने का कार्य भी किया था। यद्यपि ऋषि दयानन्द के अनुसार वेदों के अध्ययन, अध्यापन व वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार जीवनयापन करने का मनुष्यमात्र को अधिकार है परन्तु हमारे देश की अज्ञान व स्वार्थों में फंसी जनता ने वेदों से लाभ नहीं उठाया। वह वर्तमान समय तक अविद्यायुक्त मत-मतान्तरों के अन्धकार में फंसे हुए हैं। हमारे सनातन पौराणिक बन्धु वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते तो हैं परन्तु उसका वह लाभ नहीं लेते जो उनके लिये उचित है। वह अविद्यायुक्त पुराणों व ऐसे ही अन्य ग्रन्थों को अपना धर्म व कर्तव्य मान बैठे हैं। ऋषि दयानन्द ने इनकी यह अविद्या दूर करने के अनेकानेक प्रयत्न किये परन्तु इन्होंने उससे लाभ नहीं उठाया। ईसाई एवं मुसलमान तथा बौद्ध, जैन व सिख समुदाय के लोग भी वेदों को वह महत्व नहीं देते जो ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण उन्हें दिया जाना चाहिये।

वर्तमान समय में केवल आर्यसमाज जी वेदों का सच्चा वाहक, धारक, रक्षक एवं प्रचारक है। सभी आर्यों द्वारा जीवनयापन एवं अन्य कार्य वेदों की आज्ञा अनुसार ही किये जाते हैं। वह वेद एवं वेदानुकूल ग्रन्थों सत्यार्थप्रकाश, उपनिषद एवं दर्शन आदि का अध्ययन करते हैं। चारों वेदों पर ऋषि एवं अन्य विद्वानों के वेदभाष्य का अध्ययन भी आर्यसमाज के अनुयायी नियमित रूप से करते हैं। सभी आर्यसमाजी शाकाहारी एवं वेदधर्म पारायण होते हैं। देशभक्ति एवं समाजहित इनके लिये सबसे अधिक महत्व रखता है। वेदों की भाषा संस्कृत है। वेदों एवं संस्कृत का सबसे अधिक सम्मान यदि संसार में कोई करता है तो वह आर्यसमाज व उसके अनुयायी ही हैं। आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य ही इसके संस्थापक ऋषि दयानन्द ने वेद प्रचार निर्धारित किया है। आर्यसमाज संगठन की यदि एक वाक्य में परिभाषा की जाये तो यह विश्व में वेदों का प्रचार व प्रसार करने वाला संगठन वा आन्दोलन है। आज संसार में वेदों का जो सम्मान व प्रचार है, उसका समस्त श्रेय ऋषि दयानन्द एवं उनके अनुयायी वैदिक विद्वानों सहित आर्यसमाज के संगठन को है। आर्यसमाज के सभी लोग वेदों पर आधारित प्रातः व सायं ईश्वर का ध्यान करने के लिये संन्ध्या करते हैं। प्रतिदिन प्रातः सायं अग्निहोत्र यज्ञ भी करते हैं। आर्यसमाज जाकर प्रति रविवार को यज्ञ करने के साथ भजन एवं वेद प्रवचनों द्वारा सत्संग करते हैं।

आर्यसमाज द्वारा अनेक प्रकार के सामाजिक कार्य किये जा रहे हैं। आर्यसमाज अनाथालय, विद्यालय, चिकित्सालय व क्लिनिक सहित वेद और संस्कृत प्रचार आदि के अनेक कार्य करता है। अतः इस संसार के रचयिता एवं पालक ईश्वर द्वारा प्रदत्त ज्ञान का एकमात्र वाहक, धारक, पोषक एवं प्रचारक संसार में केवल आर्यसमाज ही है। आज संसार में वेद विद्यमान हैं तो इसका श्रेय ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज को ही है। अतः आर्यसमाज संगठन विश्व का सबसे पवित्र, प्राणी मात्र का हितकारी, अज्ञान, अन्धविश्वासों एवं सामजिक असमानताओं को दूर करने वाला श्रेष्ठ एवं महान संगठन है। हम आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द एवं इस आन्दोलन को अपने प्राणों व तन-मन-धन से सींचने वाले सभी विद्वानों व महापुरुषों सहित दिव्य भावनाओं से युक्त इसके कार्यकर्ताओं को सादर नमन करने सहित उनका अभिनन्दन करते हैं।

●●●

# वर्ण व्यवस्था

-कृष्ण अवतार आर्य

मनू महराज ने हर मनुष्य में चार वर्ण बतलाये।
ब्राह्मण छत्री वैश्य तीसरा, चौथा शूद्र बताये।।
जितने अंग शरीर के अंदर सारे जुड़े हुए हैं।
इतने पर भी महा मूर्ख तूम फिर भी समझ न पाये।।१
वर्णों के बारे में तुम सुनलो तुझे बताते।
शरीर का ऊपर वाला हिस्सा ब्राह्मण इसे बताते।।
सप्त ऋषि कहते है इसको समझो तुम कंप्यूटर।
जैसा ज्ञान किया है अर्जित इसमें फीड बताते।।२
ज्ञानी पुरुष हमेशा जग में करते सदा भलाई।
अमृत वाणी सदा बोलते करते नहीं बुराई।।
ईश्वर का गुणगान करे और अहिंसा वादी होते।
सर्वे भवन्तु सुखाय बाला विचार हमेशा रखते।।३
दूसरा अंग शरीर का देखो इसको भुजा बताते।
करता सारा काम दूसरा रक्षक इसे बताते।।
कितना भी पड़े कष्ट भुजा पर करे शरीर की रक्छा।
इसीलिए इन भुजाओ को पक्का छत्री कहलाते।।४
तीसरा अंग है शरीर में उसको पेट बताते।
जैसा भी तुम खाते पीते यही स्टोर कराते।।
पक्षपात नहीं करता सबको भोजन पहुंचाता है।
इसीलिए तो मेरे भाइयों पेट को वैश्य बताते।।५
चौथा वर्ण शरीर का निचला हिस्सा शूद्र बताते।
सारा भार शरीर का देखो जो पैरों पर बतलाते।।
पंडित जी कही जाय कृष्ण तो पैर को करे इशारा।
सारा भार शरीर का लेकर
पैर ही दौड़ लगाते।।६

भारतीय पुलिस पदक से सम्मानित

# सत्यार्थप्रकाशः क्यों पढ़ें? इसका उत्तर निम्नलिखित है

१. जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त (तक) मानव जीवन की लौकिक - परालौकिक समस्त समस्याओं को सुलझाने के लिए यह ग्रन्थ एक मात्र अमूल्य ज्ञान का भण्डार है।

२. यह एक ऐसा ग्रन्थ है, जो पाठकों को इस ग्रन्थ में प्रतिपादित सर्वतंत्र, सार्वजनीन, सनातन मान्यताओं के परीक्षण के लिए आह्वान करता है।

३. इस ग्रन्थ में ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त ऋषि मुनियों के वेद प्रतिपादित सारभूत विचारों का संग्रह है।

४. अल्पविद्यायुक्त स्वार्थी, दुराग्रही लोगों ने जो वेदादि सत्य शास्त्रों के मिथ्या अर्थ करके उन्हें कलंकित करने का दुःसाहस किया था, उनके मिथ्या अर्थों का खण्डन और सत्यार्थ (सत्य अर्थों) का प्रकाश अकाट्य युक्तियों और प्रमाणों से इस ग्रन्थ में किया गया है। किसी नवीन मत की कल्पना इस ग्रन्थ में लेशमात्र भी नहीं है।

५. वेदादि सत्य शास्त्रों के अध्ययन के बिना सत्य ज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं। उनको समझने के लिए यह ग्रन्थ कुंजी का काम करता है। इस ग्रन्थ के अध्ययन करने से वेदादि सत्य शास्त्रों का सत्य - सत्य अर्थ समझना सरल हो जाता है।

६. अत्यन्त समृद्धिशाली, सर्वदेश शिरोमणि भारत देश का पतन किस कारण से हुआ एवं पुनः उत्थान कैसे हो सकता है, इस विषय पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

७. मानव जाति के पतन का कारण जो मतवादियों की मिथ्या धारणाएँ हैं, उनका पूर्णतया निष्पक्ष, सप्रमाण और युक्तिपूर्ण खण्डन इसमें किया गया है।

८. इसमें मूल दार्शनिक सिद्धान्तों को ऐसी सरल रीति से समझाया गया है कि इसे पढ़कर साधारण शिक्षित व्यक्ति भी एक अच्छा दार्शनिक बन सकता है। जिस ने इस ग्रन्थ को न पढ़कर नव्य (नये) महाकाव्य अनार्ष ग्रन्थों के आधार पर दार्शनिक सिद्धान्तों को पढ़ा है उस की मिथ्या धारणाओं का खण्डन और सत्य मान्यताओं का मण्डन इस ग्रन्थ का अध्ययन करने वाला कर सकता है।

९. ऋषि मन्तव्यों पर इस ग्रन्थ को पढ़ने से पूर्व जितनी भी शंकाएं किसी को होती हैं, वे सब इस के पढ़ने से समूल नष्ट हो जाती है, क्योंकि उन सब शंकाओं का समाधान इसमें विद्यमान है।

१०. धर्म के मौलिक और वास्तविक स्वरूप का पूर्ण परिचय केवल इस ग्रन्थ में मिलता है।

११. इसकी एक विशेषता यह भी है कि अध्याय शब्द के स्थान पर समुल्लास शब्द का प्रयोग किया गया है, जो दो शब्द (समू+उल्लास = समुल्लास) हुआ है, जिसका अर्थ है (समू) यानि समान और (उल्लास) यानि प्रसन्नता। इनको मिलाने पर समुल्लास का अर्थ हुआ समान प्रसन्नतापूर्ण अर्थात् सत्यार्थप्रकाश में सभी समुल्लासों को लिखते समय एक जैसा प्रसन्न भाव रखा गया है। किसी भी विषय की व्याख्या करने, खण्डन - मण्डन करने अथवा समीक्षा करने में एक जैसा प्रसन्न भाव रखा गया है। लेशमात्र भी कहीं कोई नाराजगी, द्वेष, ईर्ष्या, अन्यथा भाव या पूर्वाग्रह युक्त होकर इस ग्रन्थ को नहीं लिखा गया है।

१२. ऋषि दयानन्द से पूर्ववर्ती ऋषियों के काल में संस्कृत की व्यापक रूप में व्यवहार था और वेदों के सत्य अर्थ का ही प्रचार था। उस समय के सभी आर्ष ग्रन्थ संस्कृत भाषा में ही उपलब्ध होते हैं। महाभारत के पश्चात् सत्य वेदार्थ का लोप और संस्कृत का अति ह्रास हुआ। विद्वानों ने अल्प विद्या और स्वार्थ के वशीभूत होकर जनता को भ्रम में डाला एवं मतवादियों ने बहुत से आर्ष ग्रन्थ नष्ट करके ऋषि - मुनियों के नाम पर मिथ्या ग्रन्थ बनाये द्य उन के ग्रन्थों में प्रक्षेप किया जिस से सत्यविज्ञान का लोप हुआ। उस नष्ट हुए विज्ञान को महर्षि ने इस ग्रन्थ में प्रकट किया है। महर्षि ने इस ग्रन्थ में बहुमूल्य मोतियों को चुन-चुनकर आर्यभाषा में अभूतपूर्व माला तैयार की, जिस से सर्वसाधारण शास्त्रीय सत्य मान्यताओं को जानकर स्वार्थी विद्वानों के चंगुल से बच सकें।

१३. महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश प्रधान ग्रन्थ है। इसमें उनके सभी ग्रन्थों का सारांश आ जाता है।

१४. इसके पढ़े बिना कोई भी आर्य ऋषि के मन्तव्यों और उनके कार्यक्रमों को भली प्रकार नहीं समझ सकता एवम् अन्यों के उपदेशों में प्रतिपादित मिथ्या सिद्धान्तों को नहीं पहचान सकता। जिसे अनेक भ्रान्त धारणाएं मस्तिष्क में बैठ जाती हैं जिनके निराकरण के लिए इस ग्रन्थ का अनेक बार अध्ययन सर्वथा अनिवार्य है।

१५. इस में आर्य समाज के मत - मतान्तरों के अन्तर को अनेक स्थानों पर एवम् एकादश समुल्लास में विशेष रूप से खुलकर समझाया गया है।

१६. द्वादश समुल्लास में, नास्तिक और बौद्ध, जैन, तथा त्रयोदश समुल्लास में, ईसाई मत औरचतुर्थ समुल्लास में, मुस्लिम मत की समीक्षा किया गया है।

१७. सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ने से मन में राष्ट्रभक्ति की भावना जागृत होती है और देश के लिए मर - मिटने के लिए व्यक्ति को शिक्षा मिलती है। इसमें हमारे देश के गौरव के बारे में बतलाया गया है। इसे पढ़ने से क्रान्तिकारी विचार उत्पन्न होते हैं और देश के लिए कुछ करने के विचार आते हैं द्य इसे पढ़ने वाला व्यक्ति अपने देश, संस्कृति से प्रेम करने लगता है।

इस पुस्तक से निम्नलिखित क्रान्तिकारियों को राष्ट्र के लिए मर मिटने की शिक्षा मिली --

| | | | |
|---|---|---|---|
| रामप्रसाद बिस्मिल | शहीद भगत सिंह | चन्द्रशेखर आजाद | लाला लाजपत राय |
| वीर सावरकर | स्वामी श्रद्धानन्द | श्याम जी कृष्ण वर्मा | भाई परमानन्द |
| पंडित गुरूदत्त | हंसराजआदि। | | |

इन क्रान्तिकारियों, राष्ट्रभक्तों की जीवनी, आत्मकथा में उन्होंने स्वयं यह लिखा है कि सत्यार्थप्रकाश ने उनके जीवन का तख्ता पलट दिया और उन्होंने स्वयं यह लिखा है कि वे सत्यार्थप्रकाश से प्रेरित है।

१८. सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने वाला व्यक्ति सत्य को जान जाता है, वह सभी तरह के पाखण्डों, अंधविश्वासों, कुरीतियों, मिथ्या बातों को जान जाता है और उस व्यक्ति को कभी भूत - प्रेत नहीं सताते, कभी किसी ग्रह का योग उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाता। जो इस ग्रन्थ को पढ़ लेता है, वह समस्त पाखण्डों, अंधविश्वासों और मिथ्या बातों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

१९. सत्यार्थप्रकाश में वैदिक जीवन पद्धति की सारी विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

२०. सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने वाला व्यक्ति ईश्वर का सच्चा स्वरूप जान जाता है।

ईश्वर क्या है ?

ईश्वर के क्या - क्या कार्य हैं ?

ईश्वर कैसे इस जगत का पालन करता है ?

इस ग्रन्थ में वेदों और अनेक वैदिक ग्रन्थों से प्रमाण दिये गये हैं।

साभार-वैदिक विचार

पृष्ठ.....२ का शेष (वेद मंत्र)

स्वामी दयानन्द ने इस श्लोक का भावार्थ इस प्रकार दिया है, जो उपदेशकवर्ग के काम की चीज है- ''इसलिए विद्या पढ़, विद्वान्, धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे और उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले। जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं, वे पुरुष धन्य हैं।''

(सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास १०)

ऋषि दयानन्द ने जिन विद्वान् उपदेशकों के विषय में ऊपर के उद्धरण में संकेत किया है उन्हीं को वेदमन्त्र में ''सखायः'' कहा गया है। सखिन् या सखा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है- ''सखायः समानस्थानाः शास्त्रादिविषयज्ञानाः।'' 'ख्या' प्रकथने धातु में 'स' लगकर 'सखिन्' बन गया है। ख्याति, व्याख्या, व्याख्यान, ये सब शब्द इसी धातु का अर्थ देते हैं। जो उपदेशक बुद्धि का प्रयोग करके विद्या प्राप्त करता है और शुद्धभाव से उसका उपदेश करता है वह 'सखा' है और सखा के सखित्व का जो फल है वही एक प्रकार से सख्य है। सख्य का परिणाम है भद्रा लक्ष्मी। याद रखना चाहिए। कि केवल बोलना ही भद्रा लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं करा सकता। वक्ता तो संसार में बहुत-से हैं और बहुत-से इनमें से प्रभावशाली भी होते हैं, जिनको वाक्-पटु, सभा-चतुर या वाचाल कहते हैं, वे सभी छानकर वाणी का प्रयोग नहीं करते। बड़े-बड़े व्याख्यान-दाता अपने उत्तेजक व्याख्यानों द्वारा जनता को पथभ्रष्ट कर देते हैं। कहा जाता है कि भाषा भावनाओं को व्यक्त करती है (Language is that which e-presses thought-) परन्तु यही भाषा नादान या स्वार्थी मनुष्यों से प्रयुक्त होकर भावनाओं के छिपाने का साधन बन जाती है (Language is that which conceals thought-)। देश जब दो दलों में विभक्त हो जाता है तो हर एक दल के पोषक जनता में दूसरे पक्ष के विरुद्ध भ्रान्तियाँ उत्पन्न करते हैं। यह सब भाषा को न छानकर प्रयुक्त करने के कारण होता है।

मनु महाराज ने वाणी के चार दोष बताये हैं जिनसे वाणी दूषित हो जाती है-

पारुष्यमनृतं चैव पैशून्यं चापि सर्वशः।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्।।

- अध्याय १२.४ या ६

वाणी-सम्बन्धी दुष्टकर्म चार हैं- पहला (पारुष्य) कठोर वचन, दूसरा (अनृत) झूठ बोलना, तीसरा (पैशून्यम्) अर्थात् सब प्रकार की चुगली, चौथा (असम्बद्ध-प्रलाप) व्यर्थ की बातचीत करना। ये चारों वे प्रसिद्ध दोष हैं जो शुद्ध सत्तुओं को भक्ष्य से अभक्ष्य बना देते हैं और सखाओं को शत्रुओं में परिणत कर देते हैं। इन दोषों से बचने का एकमात्र उपाय है वाणी को बुद्धि के तितउ से छानकर प्रयोग करना। जिन्होंने भारतवर्ष की सभ्यता का कई सहस्र वर्षों का इतिहास पढ़ा है वे जानते हैं कि जहां शुद्ध वेदवाणी ने आर्यजाति को संसार की सबसे प्रमुख और प्रभावशाली जाति बना दिया, उसी जाति ने जब वेदवाणी को बुद्धि से अलग करके बरतना आरम्भ किया तो वेदमन्त्रों को पढ़कर क्या-क्या अनर्थ नहीं किये गये ! नये-नये अवैदिक धर्मों की स्थापना और उत्पत्ति इसी बुद्धिहीनता का परिणाम थी, अतः यह आवश्यक है कि हम इस मन्त्र पर पूर्ण रीति से विचार करें और जो-जो परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो गई हैं जिनके कारण हम लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं कर पाते उनका निराकरण करें। जब हम कहते हैं कि वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परमधर्म है तो इसका यही अर्थ है कि वेदमन्त्रों के अर्थों को बुद्धि की कसौटी पर कसकर और उनकी यथार्थ भावनाओं को समझकर उनके अनुसार आचरण करें, तभी हमारी उन्नति होगी और विश्व का कल्याण होगा।

●●●

# गुरूकुल पूँठ में गुरूजनों का आगमन

महाभारत कालीन प्राचीन तीर्थ स्थली पुष्पावती में गुरू द्रोणाचार्य के गुरूकुल एवं एकलव्य की साधना स्थली पर स्व. स्वामी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती जी द्वारा स्थापित महर्षि दयानन्द गुरूकुल महाविद्यालय पूठ में भ्रमणार्थ पधारे दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली के संस्कृत विभाग अध्यक्ष प्रो. ओमनाथ विमली, प्रो. भारतेन्दु पाण्डेय, प्रताप सिंह कल्पना आदि प्रोफेसरों ने गुरूकुल की प्रशंसा की। प्रो. ओमनाथ विमली ने ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद देते हुए कहा कि गुरूकुल प्राचीन संस्कृति व परंपरा को बनाये हुए है। आज हम सबको क्रांतिवीरों के बलिदान को याद करते हुए देशोन्नति में अपना योगदान देना है। प्रो. भारतेन्दु पाण्डेय ने कहा कि गंगा किनारे पर स्थित यह गुरूकुल स्थयी धर्मेश्वरानन्द सरस्वती जी के त्याग तपस्चया और शिक्षा के प्रति समर्पण का फल है। उन्होंने गुरूकुलों की परम्परा को जारी करते हुए गुरूकुल गौशाला, वृद्धाश्रम की स्थापना करके समाज का महत्वपूर्ण कार्य किया है। आचार्य सोमेन्द्र शास्त्री ने गुरूकुल में पधारने पर उनका आभार प्रकट किया। सोमेन्द्र शास्त्री ने पूठ के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विषय की जानकारी प्रदान की। उन्होंने बताया कि वार्तालाप के दौरान प्रोफेसरों में पुष्पावती पूठ के ऐतिहासिक विषयों पर शोधकार्य करने का आश्वासन दिया। जिससे महाभारतकालीन गुरूकुल को शोध कार्य द्वारा प्रमाणित किया जा सके। उन्होंने राष्ट्रीय सेमिनार भी आयोजित करने का आश्वासन दिया। इस अवसर पर डॉ. मोहनदास तिवारी, आचार्य कुलदीप, आचार्य अनिल, आचार्य मुकुल, आचार्य रणजीत आर्य आदि मौजूद रहे।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र ०७ अगस्त, २०२५ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

# आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

## 'आर्य समाज मंदिर हिम्मतपुर काकामई के सौंदर्यीकरण की योजना को मिली स्वीकृति'

उत्तर प्रदेश के पर्यटन एवं संस्कृति विभाग द्वारा एटा जनपद के ऐतिहासिक आर्य समाज मंदिर, हिम्मतपुर काकामई के सौंदर्यीकरण का कार्य प्रस्तावित किया गया है। इस आशय की जानकारी मंगलवार को अलीगढ़ में माननीय मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ जी की अध्यक्षता में आयोजित उच्चस्तरीय समीक्षा बैठक के दौरान पर्यटन विभाग के महानिदेशक मुकेश मेश्राम द्वारा दी गई।

यह निर्णय क्षेत्रीय जनभावनाओं, धार्मिक-सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण और पर्यटन विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जा रहा है। विदित हो कि यह पहले आर्य समाज के सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान आचार्य जयप्रकाश शास्त्री के अनुरोध पर क्षेत्रीय विधायक श्री वीरेंद्र सिंह लोधी द्वारा शासन स्तर पर उठाई थी। विधायक ने मुख्यमंत्री को इस ऐतिहासिक स्थल के धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व से अवगत कराते हुए इसके विकास की आवश्यकता पर जोर दिया था।

आर्य समाज मंदिर, हिम्मतपुर काकामई, आर्य समाज के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार, वैदिक शिक्षा एवं सामाजिक सुधार आंदोलनों का केंद्र रहा है। वर्षों से यह मंदिर ग्रामीण क्षेत्र में वैदिक यज्ञ, संस्कार, धर्मोपदेश तथा समाजोत्थान की गतिविधियों का प्रमुख स्थल बना हुआ है।

पर्यटन विभाग द्वारा प्रस्तावित योजना के अंतर्गत मंदिर परिसर का सौंदर्यीकरण, मुख्य भवन की मरम्मत, परिसर में पार्क, सत्संग हॉल, प्रकाश व्यवस्था, पाथ-वे, सूचना पट्ट और अन्य सुविधाओं का विकास किया जाएगा। साथ ही स्थानीय स्तर पर धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने हेतु प्रचार-प्रसार की व्यवस्था भी की जाएगी।

आचार्य जयप्रकाश शास्त्री ने इस निर्णय पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि यह आर्य समाज के लिए एक ऐतिहासिक क्षण है। वर्षों से इस मंदिर के जीर्णोद्धार और विकास की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। सरकार की इस पहल से न केवल आर्य समाज को बल मिलेगा, बल्कि युवा पीढ़ी को वैदिक संस्कृति से जुड़ने का अवसर भी प्राप्त होगा।

इस योजना को शीघ्र अमल में लाने के लिए विभागीय कार्यवाही प्रारंभ हो चुकी है। उम्मीद की जा रही है कि आने वाले कुछ महीनों में इस मंदिर का कायाकल्प हो जाएगा, जिससे न केवल स्थानीय श्रद्धालुओं को बेहतर सुविधाएँ मिलेंगी बल्कि यह स्थल धार्मिक पर्यटन के मानचित्र पर भी एक नया आयाम स्थापित करेगा।

## शराब के दुष्परिणाम का आंकलन

### हमारा सरकारों को खुली चुनौती

-प्रो महावीर धीर शास्त्री

शराब से लाभ बिल्कुल नहीं! जो लाभ बताया जा रहा है उससे २० गुणा हानि है! सही तरीके से एक एक वस्तु का सर्वे करके देखें सरकारें! पुलिस,अपराध रोको विभागों, शराबियों के परिवार और पडौसियों से गहन पूछताछ करें! शराबी ने पत्नी,लडकी,मां या पिता को शराब के पैसे न देने पर उनकी हत्या कर दी, दुष्कर्म कर हत्या कर दी! एक मनुष्य की कितना मूल्य लगाओगे? सडक पर दुर्घटनाओं में शराबीके कारण कितनी जन धन व संसाधन की हानि हुई?तत्कालकी हानि ही नहीं! यदि दुर्घटना में नष्ट संसाधन या मनुष्य बने रहते तो उनकी उचित जीवनीय क्षमतासे कितना लाभ होता? ये जीवित रहकर परिवार या देश हित में कितना कमाते?सही सर्वे करें ।प्रत्येक प्रकार के अपराधों में कहीं न कहीं शराब भी जुडी मिलेगी ।शराब निर्माणव्यय का सर्वे करें। शराब निर्माण में नष्ट होने वाले संसाधनों का १००% सही आकलन करें! वे संसाधन शराब निर्माण के स्थान पर अन्य समाज हित के कार्यों में लगाए जाते तो कितना लाभ व सुविधा होती ? शराब के लाभ से सही तुलना करें! शराब से होने वाले अपराधों में पुलिस कितनी बढानी पडी? न्यायाधीश कितने बढाने पडे? पुलिस लाइन, जेलें कितनी बढानी पडी? उनके लिए भूमि,कर्मियों के वेतन भत्ते,गाडियां व उनके पैट्रोल डीजल, मरम्मत के व्यय का सही आकलन करें!जितने व्यक्ति आज शराब के ठेकों पर काम कर रहे हैं, उनमें आपसी होड में मौतें तक हो रही हैं शराबी को तो कितनी भी कीमत में शराब मिल जाए वह तो घर धरती बेच कर भी लेता जाता है! लेकिन ठेकेदार के इलावा भी शराब को महंगे मूल्य पर शराबी तक पहुंचा कर उसका जीवन बर्बादकरके चांदी कूटते हैं! प्रत्येक जिले में शराब से संबन्धित कार्यालय हैं उनकी भूमि कर्मियों के वेतन भत्ते गाडी और उनके व्यय, सरकारी निजी नशामुक्ति केन्द्र,नशामुक्ति अभियानों के व्ययों का सर्वे करें। यदि ये संसाधन अन्य समाजहित के कार्यों में लगते तो तुलना करें! कितना लाभ सुविधाएं प्राप्त होकर जनता में सुख शांति व समृद्धि होती! कलह अशांति अपराध घटते, उनका मूल्य भी निकालो तो स्पष्ट हो जाएगा शराब से कितनी हानि व लाभ है? सरकार को पैसा चाहिए तो सरकार को अनेक प्रकार की हो रही टैक्स चोरी और भ्रष्टाचार को रोकना चाहिए। सरकार मालामाल हो सकती है लेकिन सरकारी कर्मी इतने भ्रष्ट कायर और कमजोर हैं कि वे सरकार का भठ्ठा बैठा देते हैं! जनता के मन में यह गलत धारणा बैठा दी गई है कि शराब से लाभ है! यह जनता से बहुत बडा भारी धोखा हो रहा है! जनता की सुख शांति समृद्धि पर लगातार डाका जा रहा है! और लोगसमझ रहे हैं कि सब ठीक हो रहा है! लोगों को आज की कुशिक्षा और व्यवस्था ने ऐसा बना दिया है कि वे देश हित के प्रति अपना कर्तव्य ही नहीं समझते हैं! वे चिन्तनाशून्य बना दिए गए हैं! और सत्ताएं आराम से मौज ले रही हैं! एक शराब ही नहीं सकल कृषि, खानपान, शिक्षा, जल, जंगल, भूमि और विचार सब भयंकर रुप से प्रदूषित हो चुके हैं! लोग रोगों में बिलबिला रहे हैं! वे इतने कुन्द मस्तिष्क के हो चुके हैं कि उन्हें पता ही नहीं इन समस्याओं का मूल कारण क्या है? बुद्धिजीवी तनिक तो आवाज उठाएं! उनकी बुद्धिका हरण हो चुका है! वे ताश खेलने व व्यर्थ की गपशप में समय लगा रहे हैं ! यदि वे बुद्धि का सदुपयोग नहीं करेंगे तो अगले जन्म में ऐसे व्यक्तियों को बुद्धि नहीं मिलेगी! उन्हें बुद्धिहीन प्राणियों की योनियों में जाकर उनमें ही आनन्द लेना पडेगा!

प्रेमनगर रोहतक -९४६६५६५१६२

स्वामी-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक-पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है-सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।